जय गुरु हीरा   श्री महावीराय नमः   जय गुरु मान

श्री कुशलरत्नगजेन्द्रगणिभ्यो नमः

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए

(ज्ञान समस्त द्रव्यों का प्रकाशक है)

जैनागम स्तोक वारिधि

पाँचवीं कक्षा

अ. भा. श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड
जोधपुर

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड

प्रधान कार्यालय :

घोड़ों का चौक, जोधपुर - 342001 (राजस्थान)

फोन : 0291-2630490, 2622623 फैक्स : 0291-2636763

लघुदण्डक का थोकड़ा

जीवाजीवाभिगम सूत्र की प्रथम प्रतिपत्ति में 24 दण्डक के जीवों का वर्णन है, उसके आधार से लघुदण्डक का थोकड़ा इस प्रकार है-

गाथा–

नेरइआ असुराई, पुढवाई बेइंदियादओ चेव।
पंचिंदिय-तिय-नरा, वंतर-जोइसिय-वेमाणी।।1।।

चौबीस दण्डकों के नाम–

1. सात नारकी का एक दण्डक।
2-11. असुरकुमारादि दस भवनपति के दस दण्डक।
12-16. पृथ्वीकायादि पाँच स्थावर के पाँच दण्डक।
17-19. बेइन्द्रियादि तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक।
20. तिर्यंच पंचेन्द्रिय का एक दण्डक।
21. मनुष्य का एक दण्डक।
22. वाणव्यन्तर देवों का एक दण्डक।
23. ज्योतिषी देवों का एक दण्डक।
24. वैमानिक देवों का एक दण्डक।

ये चौबीस दण्डक हुए।

संग्रहणी गाथाएँ–

सरीरोगाहण-संघयण-संठाण-कसाय-तह य हुंती सन्नाओ।
लेसिंदिय-समुग्घाए सन्नी वेए य पज्जत्ती।।1।।
दिट्ठी दंसण नाणे जोगुवओगे तहा किमाहारे।।
उववाय ठिई मरण चवण गइरागई चेव।।2।। पाणे जोगे।

अर्थ– 1. शरीर, 2. अवगाहना, 3. संहनन, 4. संस्थान, 5. कषाय, 6. संज्ञा, 7. लेश्या, 8. इन्द्रिय, 9. समुद्घात, 10. संज्ञी, 11. वेद, 12. पर्याप्ति, 13. दृष्टि, 14. दर्शन, 15. ज्ञान, 16. अज्ञान, 17. योग, 18. उपयोग, 19. आहार, 20. उत्पाद, 21. स्थिति, 22. मरण, 23. च्यवन, 24. गति-आगति, 25. प्राण और 26. योग।✦

1. शरीर द्वार : उत्पत्ति समय से जो जीर्ण-शीर्ण अर्थात् विनाश होने वाला हो, उसे शरीर कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं- 1. औदारिक, 2. वैक्रिय, 3. आहारक, 4. तैजस और 5. कार्मण शरीर।

2. अवगाहना द्वार : शरीर व आत्म-प्रदेश जितने आकाश प्रदेशों को अवगाहित करे, रोके उसे अवगाहना कहते हैं।

✦ जीवाभिगम सूत्र की प्रथम प्रतिपत्ति में प्राण और योग, ये दो अन्तिम द्वार नहीं हैं।

3. संहनन द्वार : हड्डियों की रचना विशेष को संहनन कहते हैं। इसके छः भेद हैं- 1. वज्रऋषभ नाराच संहनन, 2. ऋषभ नाराच संहनन, 3. नाराच संहनन, 4. अर्धनाराच संहनन, 5. कीलिका संहनन, 6. सेवार्त्तक संहनन।

4. संस्थान द्वार : नाम कर्म के उदय से बनने वाली शरीर की आकृति विशेष को संस्थान कहते हैं- इसके छः भेद हैं- समचौरस, 2. न्यग्रोध परिमण्डल, 3. सादि, 4. वामन, 5. कुब्जक और 6. हुण्डक संस्थान।

5. कषाय द्वार : कष् अर्थात् संसार, आय अर्थात् वृद्धि, जिससे संसार बढ़े, उसे कषाय कहते हैं- इसके चार भेद हैं- 1. क्रोध, 2. मान, 3. माया और 4. लोभ कषाय।

6. संज्ञा द्वार : आहारादि की अभिलाषा करना संज्ञा है। इसके चार भेद हैं- 1. आहार, 2. भय, 3. मैथुन और 4. परिग्रह संज्ञा।

7. लेश्या द्वार : जो शक्ति आने वाले कर्मों को आत्मा के साथ चिपका देवे, उसे लेश्या कहते हैं। अथवा योग की प्रवृत्ति से उत्पन्न आत्मा के शुभाशुभ परिणामों को लेश्या कहते हैं। इसके छः भेद हैं- 1. कृष्ण, 2. नील, 3. कापोत, 4. तेजो, 5. पद्म और 6. शुक्ल लेश्या।

8. इन्द्रिय द्वार : शरीर के जिन अवयवों से शब्दादि विषयों का ज्ञान होता है, उन्हें इन्द्रिय कहते हैं, अथवा जीव द्वारा शब्दादि विषयों को जिन साधनों से जाना जाता है, वे इन्द्रियाँ कहलाती हैं। इसके पाँच भेद हैं- 1. श्रोत्र (कान), 2. चक्षु (आँख), 3. घ्राण (नाक), 4. रसना (जीभ) और 5. स्पर्शन इन्द्रिय (सम्पूर्ण शरीर व्यापी त्वचा)।

9. समुद्घात द्वार : सम+उद्+घात, इन तीनों से मिलकर समुद्घात शब्द बनता है। एकीभाव पूर्वक प्रबलता से कर्मों का घात करना, समुद्घात कहलाता है, इसके सात भेद हैं- 1. वेदनीय, 2. कषाय, 3. मारणान्तिक, 4. वैक्रिय, 5. तैजस, 6. आहारक और 7. केवली समुद्घात।

10. संज्ञी द्वार : जिसके मन हो उसे 'संज्ञी' और जिसके मन नहीं हो उसे असंज्ञी कहते हैं।

11. वेद द्वार : वेद मोहनीय कर्म के उदय से जीव की जो विषय-भोग की अभिलाषा होती है, उसे वेद कहते हैं- इसके तीन भेद हैं- 1. स्त्रीवेद, 2. पुरुषवेद, 3. नपुंसकवेद।

12. पर्याप्ति द्वार : आत्मा की वह शक्ति विशेष-जिससे जीव पुद्गलों को ग्रहण करके आहार-शरीरादि रूप में परिणमावे, उसे पर्याप्ति कहते हैं- इसके छः भेद हैं- 1. आहार, 2. शरीर, 3. इन्द्रिय, 4. श्वासोच्छ्वास, 5. भाषा और 6. मनःपर्याप्ति।

13. दृष्टि द्वार : जीव के अन्तःकरण की प्रवृत्ति को दृष्टि कहते हैं। इसके तीन भेद हैं- 1. सम्यग् दृष्टि, 2. मिथ्या दृष्टि और 3. सम्यग् मिथ्या (मिश्र) दृष्टि।

14. दर्शन द्वार : सामान्य रूप से वस्तु के स्वरूप को जानने को दर्शन कहते हैं। इसके चार भेद हैं- 1. चक्षु, 2. अचक्षु, 3. अवधि और 4. केवलदर्शन।

15. ज्ञान द्वार : सम्यक्त्वी द्वारा विशेष रूप से वस्तु को जानना ज्ञान कहलाता है- इसके पाँच भेद हैं- 1. मतिज्ञान, 2. श्रुतज्ञान, 3. अवधिज्ञान, 4. मनःपर्याय ज्ञान और 5. केवल ज्ञान।

16. अज्ञान द्वार : मिथ्यात्वी द्वारा विशेष रूप से वस्तु के स्वरूप को जानना अज्ञान कहलाता है। इसके तीन भेद हैं- 1. मति अज्ञान, 2. श्रुत अज्ञान और 3. विभंगज्ञान।

17. योग द्वार : वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम अथवा क्षय से मन, वचन और काया के होने वाले व्यापार को योग कहते हैं। इसके पन्द्रह भेद हैं- चार मन के- 1. सत्य मनोयोग, 2. असत्य मनोयोग, 3. मिश्र मनोयोग और 4. व्यवहार मनोयोग। चार वचन के- 5. सत्य वचन, 6. असत्य वचन, 7. मिश्र वचन और 8. व्यवहार वचन योग। सात काया के- 9. औदारिक, 10. औदारिक मिश्र, 11. वैक्रिय, 12. वैक्रिय मिश्र, 13. आहारक, 14. आहारक मिश्र और 15. कार्मण काय योग।

18. उपयोग द्वार : जीव के सामान्य-विशेषात्मक बोधरूप व्यापार को उपयोग कहते हैं। इसके बारह भेद हैं- 5 ज्ञानोपयोग, 3 अज्ञानोपयोग और 4 दर्शनोपयोग।

19. आहार द्वार : जिन पदार्थों के सेवन से शरीर पुष्ट होता है, उसे आहार कहते हैं। वह आहार जीव छः दिशाओं से 288 प्रकार का लेता है।

20. उपपात द्वार : जीव जितनी संख्या में उत्पन्न हो, उसे उपपात कहते हैं।

21. स्थिति द्वार : जीव जितने काल तक जिस भव की पर्याय को धारण करे, उसे 'स्थिति' कहते हैं।

22. मरण द्वार : जीव एक भव को छोड़कर दूसरे भव को प्राप्त करे, उसे मरण कहते हैं। इसके दो भेद हैं- 1. समोहया मरण- जिस मरण में जीव के प्रदेश ईलिका गति अर्थात् कीड़ी की कतार की तरह निकले, उसे समोहया मरण (मारणान्तिक समुद्घात पूर्वक मरण) कहते हैं। 2. असमोहया मरण- जिस मरण में गेंद (दड़ी) के उछलने अथवा बन्दूक की गोली के समान जीव के प्रदेश एक साथ निकले, उसे असमोहया मरण (बिना मारणान्तिक समुद्घात के मरण) कहते हैं।

23. च्यवन द्वारः जीव के वर्तमान-भव की पर्याय को छोड़ने को च्यवन कहते हैं।

23. गति आगति द्वार : जीव मरकर भवान्तर में जावे उसे गति कहते हैं- इसके पाँच भेद हैं- 1. नरक, 2. तिर्यंच, 3. मनुष्य, 4. देव और 5. सिद्ध गति। भवान्तर से आकर उत्पन्न होने को आगति कहते हैं। इसके चार भेद हैं- 1. नरक, 2. तिर्यंच, 3. मनुष्य और 4. देव गति। दण्डक की अपेक्षा 24 दण्डक से- 24 दण्डक में तथा मोक्ष में जावे।

25. प्राण द्वार : जिसके सद्भाव से जीव जीवित रहे, उसे 'प्राण' कहते हैं। इसके दस भेद हैं- 1. श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण, 2. चक्षुरिन्द्रिय बल प्राण, 3. घ्राणेन्द्रिय बल प्राण, 4. रसनेन्द्रिय बल प्राण, 5. स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण, 6. मनोबल प्राण, 7. वचनबल प्राण, 8. कायबल प्राण, 9. श्वासोच्छ्वास बल प्राण और 10. आयुष्य बल प्राण।

26. योग द्वारः इसके तीन भेद हैं- 1.मनोयोग, 2.वचनयोग और 3.काययोग।

लघुदण्डक के द्वारों का विवरण

एक दण्डक नारकी का और तेरह दण्डक देवता के (भवनपति के 10, वाणव्यन्तर का 1, ज्योतिषी का 1 और वैमानिक का 1 दण्डक) इन 14 दण्डकों पर 26 द्वार कहते हैं-

1. **शरीर-** पावे तीन-वैक्रिय, तैजस और कार्मण।
2. **अवगाहना-** 14 दण्डकों के शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट-
   - पहली नारकी की 7¾ धनुष, 6 अंगुल।
   - दूसरी नारकी की 15½ धनुष, 12 अंगुल।
   - तीसरी नारकी की 31¼ धनुष।
   - चौथी नारकी की 62½ धनुष।
   - पाँचवी नारकी की 125 धनुष।
   - छठी नारकी की 250 धनुष।
   - सातवीं नारकी की 500 धनुष।
   - भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी तथा पहले, दूसरे देवलोक की उत्कृष्ट अवगाहना 7 हाथ की।
   - तीसरे, चौथे देवलोक की 6 हाथ की।
   - पाँचवें, छठे देवलोक की 5 हाथ की।
   - सातवें, आठवें देवलोक की 4 हाथ की।
   - नौवें से बारहवें देवलोक की 3 हाथ की।
   - नव ग्रैवेयक देवलोक की 2 हाथ की।
   - पाँच अनुत्तर विमान की 1 हाथ की।
   - उत्तरवैक्रिय करे तो नारकी में जघन्य अवगाहना अंगुल के संख्यातवें भाग, उत्कृष्ट अपनी-अपनी अवगाहना से दुगुनी। जैसे सातवीं नारकी की भवधारणीय शरीर की अवगाहना 500 धनुष की और उत्तरवैक्रिय करे तो 1000 धनुष की। भवनपति से बारहवें देवलोक तक की जघन्य अवगाहना अंगुल के संख्यातवें भाग की, उत्कृष्ट एक लाख योजन की। नवग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देव विक्रिया नहीं करते।
3. **संहनन-** संहनन नहीं- नारकी में अशुभ पुद्गल और देवों में शुभ पुद्गल परिणमे।
4. **संस्थान-** नारकी में एक हुण्डक संस्थान तथा देवों में समचौरस संस्थान और उत्तर वैक्रिय शरीर में विविध प्रकार का संस्थान होता है।
5. **कषाय-** नारकी, देवों के 14 दण्डकों में चारों कषाय होती है।
6. **संज्ञा-** नारकी और देवता के 14 दण्डकों में चारों संज्ञा पाई जाती है।
7. **लेश्या-** पहली और दूसरी नारकी में एक कापोत लेश्या। तीसरी नारकी में कापोत और नील लेश्या। चौथी नारकी में एक नील लेश्या। पाँचवी नारकी में नील और कृष्ण लेश्या। छठी नारकी में कृष्ण लेश्या। सातवीं नारकी में महाकृष्ण

लेश्या। भवनपति और वाणव्यन्तर देवों में पहली चार लेश्या होती है- कृष्ण, नील, कापोत और तेजो लेश्या। ज्योतिषी तथा पहले दूसरे देवलोक में तेजो लेश्या। तीसरे, चौथे और पाँचवे देवलोक में पद्म लेश्या। छठे देवलोक से नवग्रैवेयक तक शुक्ल लेश्या। पाँच अनुत्तर विमान में परम शुक्ल लेश्या।✦

8. **इन्द्रिय-** नारकी और देवों में पाँचों इन्द्रियाँ होती है।

9. **समुद्घात-** नारकी में समुद्घात पावे चार-वेदनीय, कषाय, मारणान्तिक और वैक्रिय। भवनपति से यावत् बारहवें देवलोक तक प्रथम पाँच समुद्घात पावे। नव ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमान में समुद्घात पावे पाँच, परन्तु समुद्घात करे तीन-वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक। ये वैक्रिय और तैजस समुद्घात नहीं करते।

10. **सन्नी-** पहली नारकी, भवनपति और वाणव्यन्तर देवों में सन्नी और असन्नी दोनों उत्पन्न होते हैं। असन्नी कुछ देर असन्नी रहकर फिर सन्नी हो जाते हैं। बाकी में सन्नी ही उत्पन्न होते हैं।

11. **वेद-** नारकी में एक नपुंसक वेद पावे। भवनपति, वाणव्यन्तर ज्योतिषी और पहले, दूसरे देवलोक में वेद पावे दो- स्त्रीवेद और पुरुषवेद। तीसरे देवलोक से सर्वार्थसिद्ध विमान तक एक वेद पावे-पुरुषवेद।

12. **पर्याप्ति-** 14 दण्डकों में पर्याप्ति पावे छः।

13. **दृष्टि-** नारकी और भवनपति से लेकर नवग्रैवेयक तक दृष्टि पावे तीनों ही★। पाँच अनुत्तर विमान में एक सम्यग्दृष्टि ही होती है। 15 परमाधामी, 3 किल्विषी में एक मिथ्यादृष्टि ही होती है।

14. **दर्शन-** 14 दण्डकों में दर्शन पावे तीन- चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधि दर्शन।

15. **ज्ञान-** नारकी और देवों में ज्ञान पावे तीन- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान।

16. **अज्ञान-** नारकी और भवनपति से नवग्रैवेयक तक अज्ञान पावे तीन-मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान और विभंगज्ञान। पाँच अनुत्तर विमान में अज्ञान नहीं होता। 15 परमाधामी, 3 किल्विषी में 3 अज्ञान ही होते हैं, ज्ञान नहीं होते।

17. **योग-** नारकी और देवों में योग पावे ग्यारह- 4 मन के, 4 वचन के और 3 काया के (वैक्रिय शरीर काययोग, वैक्रिय मिश्र शरीर काययोग और कार्मण शरीर काय योग)।

18. **उपयोग-** नारकी और देवों में नवग्रैवेयक तक उपयोग पावे नौ- 3 ज्ञान, 3 अज्ञान और 3 दर्शन। पाँच अनुत्तर विमान में उपयोग पावे छः - तीन ज्ञान और तीन दर्शन। 15 परमाधामी, 3 किल्विषी में उपयोग पावे छः - 3 अज्ञान और तीन दर्शन।

19. **आहार-** नारकी और देव आहार लेवे 288 भेद* का। जिसमें दिशा की अपेक्षा नियमा छह दिशा का आहार लेवे।

✦ अनुत्तर विमान में 'परम शुक्ल लेश्या' देव गति की अपेक्षा से है, इसे केवली की परम शुक्ल लेश्या के समान नहीं समझना चाहिये।

★ **टिप्पणी-** नवग्रैवेयक देवों में सभी परम्पराओं में प्राचीन धारणा 2 दृष्टि की (मिश्रदृष्टि को छोड़कर) रही है। किन्तु अब भगवती सूत्र शतक- 13 उद्देशक 1 व 2 तथा शतक 24 उद्देशक- 21 के प्रमाणों तथा जीवाभिगम सूत्र की चतुर्विधा नामक तृतीय प्रतिपत्ति के द्वितीय वैमानिकोद्देशक के प्रमाण से नव ग्रैवेयक में 3 दृष्टि मानी गई है- जीवाभिगम सूत्र का मूल पाठ इस प्रकार है-

सोहम्मीसाण देवा किं सम्मादिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्मामिच्छा दिट्ठी? तिण्णि वि, जाव अंतिम गेवेज्जा देवा सम्मादिट्ठी वि मिच्छादिट्ठी वि सम्मामिच्छादिट्ठी वि। अणुत्तरोववाइया सम्मादिट्ठी, नो मिच्छादिट्ठी नो सम्मामिच्छादिट्ठी।

जीवाजीवाभिगमसूत्र- सूत्र संख्या- 201 (ब्यावर से प्रकाशित)

20. उपपात- नारकी और भवनपति से लगाकर यावत् आठवें देवलोक तक एक समय में जघन्य 1-2-3 यावत् संख्याता उत्कृष्ट असंख्याता उत्पन्न होवे। नौवें देवलोक से लगाकर यावत् सर्वार्थसिद्ध विमान तक जघन्य 1-2-3 उत्कृष्ट संख्याता उत्पन्न होवे।

21. स्थिति- समुच्चय नारकी का नेरिया और देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट 33 सागरोपम की।

			जघन्य	उत्कृष्ट
पहली नरक के नेरिये की स्थिति			10 हजार वर्ष	1 सागरोपम
दूसरी	"	"	1 सागरोपम	3 सागरोपम
तीसरी	"	"	3 सागरोपम	7 सागरोपम
चौथी	"	"	7 सागरोपम	10 सागरोपम
पाँचवी	"	"	10 सागरोपम	17 सागरोपम
छठी	"	"	17 सागरोपम	22 सागरोपम
सातवीं	"	"	22 सागरोपम	33 सागरोपम

भवनपति देवों में असुरकुमार जाति के दो इन्द्र हैं- चमरेन्द्र और बलीन्द्र। चमरेन्द्रजी के रहने की चमरचंचा राजधानी जम्बूद्वीप के मेरू पर्वत से दक्षिण दिशा में अधोलोक में है। बलीन्द्रजी के रहने की बलिचंचा राजधानी जम्बूद्वीप के मेरू पर्वत से उत्तर दिशा में अधोलोक में है। चमरेन्द्रजी के भवनवासी देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट एक सागरोपम की और उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट 3½ पल्योपम की। शेष नौ जाति के दक्षिण दिशा के भवनपति देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट 1½ पल्योपम और उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट पौन पल्योपम की।

बलीन्द्रजी के भवनवासी देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट एक सागरोपम झाझेरी। उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट 4½ पल्योपम। शेष नौ जाति के उत्तर दिशा वाले भवनपति देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम। उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट देशोन एक पल्योपम की।

वाणव्यन्तर देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट 1 पल्योपम। उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट आधा पल्योपम।

ज्योतिषी देवों की स्थिति :

ज्योतिषी देवों के पाँच भेद- 1. चन्द्र, 2. सूर्य, 3. ग्रह, 4. नक्षत्र और 5. तारा।

---

* टिप्पणी- आहार के 288 भेद- 1. पृष्ठ, 2. अवगाढ़, 3. अनन्तरोवगाढ़, 4. सूक्ष्म, 5. बादर, 6. ऊँची दिशा का, 7. नीची दिशा का, 8. तिरछी दिशा का, 9. आदि का, 10 मध्य का, 11 अन्त का, 12. स्वविषयक, 13. अनुक्रम से, 14. नियमा छहों दिशा का, 15. द्रव्य से - अनन्त प्रदेशी द्रव्य, 16. क्षेत्र से - असंख्य प्रदेशावगाढ पुद्गलों का, (17 से 28 तक) काल के 12 भेद- एक समय की स्थिति के पुद्गलों का यावत् दस समय की स्थिति के पुद्गलों का, संख्यात समय की और असंख्यात समय की स्थिति के पुद्गलों का लेवे। (29 से 288 तक) भाव के 260 भेद हैं- पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, आठ स्पर्श, ये 20 भेद। इनके प्रत्येक के 13 भेद - एक गुण काला, दो गुण यावत् दस गुण काला, संख्यात गुण काला, असंख्यात गुण काला और अनन्त गुण काला। इसी तरह गन्धादि के तेरह-तेरह भेद करने से 20X13= 260 हुए, 260+28= 288 भेद हुए।

चन्द्र-विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम, उत्कृष्ट 1 पल्योपम और एक लाख वर्ष। उनकी देवियों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम, उत्कृष्ट आधा पल्योपम और 50 हजार वर्ष।

सूर्य-विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम, उत्कृष्ट एक पल्योपम और एक हजार वर्ष। उनकी देवियों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम, उत्कृष्ट आधा पल्योपम और पाँच सौ वर्ष।

ग्रह-विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम, उत्कृष्ट एक पल्योपम। उनकी देवियों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम, उत्कृष्ट आधा पल्योपम।

नक्षत्र-विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम, उत्कृष्ट आधा पल्योपम। इनकी देवियों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम, उत्कृष्ट पाव पल्योपम झाझेरी।

तारा-विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग, उत्कृष्ट पाव पल्योपम। उनकी देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग, उत्कृष्ट पल्योपम के आठवें भाग झाझेरी।

वैमानिक देवों की स्थिति :

पहले देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य 1 पल्योपम, उत्कृष्ट 2 सागरोपम। उनकी देवियाँ दो प्रकार की हैं- 1. परिगृहीता और 2. अपरिगृहीता। परिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य 1 पल्योपम, उत्कृष्ट 7 पल्योपम। अपरिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य 1 पल्योपम, उत्कृष्ट 50 पल्योपम।

दूसरे देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य 1 पल्योपम झाझेरी, उत्कृष्ट 2 सागरोपम झाझेरी। उनकी भी देवियाँ दो प्रकार की हैं- परिगृहीता और अपरिगृहीता। परिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य 1 पल्योपम झाझेरी, उत्कृष्ट 9 पल्योपम। अपरिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य 1पल्योपम झाझेरी, उत्कृष्ट 55 पल्योपम।

			जघन्य	उत्कृष्ट
तीसरे देवलोक के देवों की स्थिति			2 सागरोपम	7 सागरोपम
चौथे	”	”	2 सागरोपम झाझेरी	7 सागरोपम झाझेरी
पाँचवें✦	”	”	7 सागरोपम	10 सागरोपम
छठे	”	”	10 सागरोपम	14 सागरोपम
सातवें	”	”	14 सागरोपम	17 सागरोपम
आठवें	”	”	17 सागरोपम	18 सागरोपम
नौवें	”	”	18 सागरोपम	19 सागरोपम
दसवें	”	”	19 सागरोपम	20 सागरोपम
ग्यारहवें	”	”	20 सागरोपम	21 सागरोपम

✦ नव लोकान्तिक देवों की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट 8 सागरोपम की भगवती सूत्र शतक 6 उद्देशक 5 में तथा ठाणांग स्थान 8 में बतलायी गयी है।

	जघन्य	उत्कृष्ट
बारहवें " "	21 सागरोपम	22 सागरोपम
पहले ग्रैवेयक "	22 सागरोपम	23 सागरोपम
दूसरे " "	23 सागरोपम	24 सागरोपम
तीसरे " "	24 सागरोपम	25 सागरोपम
चौथे " "	25 सागरोपम	26 सागरोपम
पाँचवें " "	26 सागरोपम	27 सागरोपम
छठे " "	27 सागरोपम	28 सागरोपम
सातवें " "	28 सागरोपम	29 सागरोपम
आठवें " "	29 सागरोपम	30 सागरोपम
नौवें " "	30 सागरोपम	31 सागरोपम
चार अनुत्तर विमान"	31 सागरोपम	33 सागरोपम
सर्वार्थसिद्ध " "	अजघन्य अनुत्कृष्ट	33 सागरोपम

22. **समोहया असमोहया मरण-** नारकी और देव दोनों प्रकार के मरण से मरते हैं।

23. **च्यवन-** नारकी और भवनपति देव से लगाकर आठवें देवलोक तक एक समय में जघन्य 1-2-3 यावत् संख्याता उत्कृष्ट असंख्याता च्यवे। नौवें देवलोक से लगाकर सर्वार्थसिद्ध विमान तक एक समय में जघन्य 1-2-3 उत्कृष्ट संख्याता च्यवे।

24. **गति आगति-** पहली नारकी से लगाकर छठी नारकी तक दो गतियों से आवे और दो गतियों में जावे- तिर्यंच गति और मनुष्य गति। दण्डक की अपेक्षा दो दण्डकों से आवे और दो दण्डकों में जावे- 20वाँ तिर्यंच पंचेन्द्रिय और 21वाँ मनुष्य का दण्डक। सातवीं नारकी में दो गतियों से आवे- तिर्यंच गति और मनुष्य गति से। एक तिर्यंच गति में जावे। दण्डक की अपेक्षा दो दण्डकों से आवे (20-21 वाँ) और एक तिर्यंच पंचेन्द्रिय (20वाँ दण्डक) में जावे। भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और पहले, दूसरे देवलोक के देव दो गतियों से आवे और दो गतियों में जावे- तिर्यंच गति और मनुष्य गति। दण्डक की अपेक्षा दो दण्डक से आवे- तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य से। पाँच दण्डक में जावे-पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य में। तीसरे देवलोक से लगाकर आठवें देवलोक तक गति-आगति पहली नरकवत्। नौवें देवलोक से लगाकर सर्वार्थसिद्ध विमान के देव-एक मनुष्य गति से आवे और उसी मनुष्य गति में जावे, दण्डक की अपेक्षा- एक दण्डक से आवे और उसी एक दण्डक में जावे- मनुष्य का दण्डक।

25. **प्राण-** नारकी और देवों में प्राण पावे दस।

26. **योग-** नारकी और देवों में योग पावे तीनों ही।

पाँच स्थावर और असन्नी मनुष्य

1. **शरीर-** चार स्थावर (वायुकाय वर्ज कर) और असन्नी मनुष्य में शरीर पावे तीन-औदारिक, तैजस और कार्मण। वायुकाय में शरीर पावे चार-उपर्युक्त तीन एवं वैक्रिय शरीर।

2. **अवगाहना-** चार स्थावर (वनस्पतिकाय वर्ज कर) और असन्नी मनुष्य, इनकी अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग। किन्तु जघन्य से उत्कृष्ट असंख्यात गुणा है। वनस्पतिकाय की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट 1000 योजन झाझेरी, कमलनाल की अपेक्षा से।

3. **संहनन-** सभी में एक सेवार्त्तक संहनन।

4. **संस्थान-** सभी में एक हुण्डक संस्थान।

5. **कषाय-** सभी में चारों कषाय।

6. **संज्ञा-** चारों संज्ञा।

7. **लेश्या-** पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय, इन तीनों के बादर (प्रत्येक) के अपर्याप्त में लेश्या पावे चार- कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या और तेजो लेश्या। शेष सभी एकेन्द्रिय और असन्नी मनुष्य में लेश्या पावे तीन-कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या।

8. **इन्द्रिय-** पाँच स्थावर में एक स्पर्शनेन्द्रिय पावे। असन्नी मनुष्य में पाँचों ही इन्द्रियाँ पावे।

9. **समुद्घात-** चार स्थावर - (वायुकाय वर्ज कर) और असन्नी मनुष्य, इनमें तीन समुद्घात पावे - वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक समुद्घात। वायुकाय✦ में चार समुद्घात पावे - उपर्युक्त तीन और चौथा वैक्रिय समुद्घात।

10. **सन्नी-** सभी असन्नी हैं।

11. **वेद-** सभी में एक नपुंसक वेद पावे।

12. **पर्याप्ति-** पाँच स्थावर में चार पर्याप्ति पावे - आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति और श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति। असन्नी मनुष्य चौथी पर्याप्ति का अपर्याप्ता रहते हुए ही मर जाता है।

13. **दृष्टि-** सभी में एक - मिथ्यादृष्टि।

14. **दर्शन-** पाँच स्थावर में एक अचक्षुदर्शन होता है। असन्नी मनुष्य में चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ये दो दर्शन होते हैं।

15. **ज्ञान-** पाँच स्थावर और असन्नी मनुष्य में ज्ञान नहीं।

16. **अज्ञान-** सभी में मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान ये दो अज्ञान पावे।

17. **योग-** चार स्थावर- पृथ्वी, अप्, तेऊ, वनस्पति और असन्नी मनुष्य, इन पाँचों में योग पावे तीन-औदारिक, औदारिक मिश्र और कार्मण काय योग। वायुकाय में योग पावे पाँच - उपर्युक्त तीन व वैक्रिय, वैक्रियमिश्र काययोग।

✦ बादर वायुकाय के पर्याप्त में ही वैक्रिय समुद्घात पाती है, शेष वायुकाय के तीन भेदों में तो तीन ही समुद्घात होती है।

18. **उपयोग-** पाँच स्थावरों में उपयोग पावे तीन-मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान और अचक्षु दर्शन। असन्नी मनुष्य में उपयोग पावे चार-मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, चक्षु दर्शन और अचक्षु दर्शन।

19. **आहार-** पाँच स्थावर आहार 288 भेदों का लेते हैं, जिसमें व्याघात हो तो कदाचित् तीन दिशा का, कदाचित् चार दिशा का, कदाचित् पाँच दिशा✦ का और निर्व्याघात की अपेक्षा नियमा छह दिशा का। असन्नी मनुष्य आहार लेवे 288 भेद का, जिसमें दिशा की अपेक्षा नियमा छह दिशा का।

20. **उपपात-** चार स्थावर एवं असन्नी मनुष्य प्रति समय निरन्तर जघन्य एक-दो-तीन यावत् संख्याता, उत्कृष्ट असंख्याता उपजे और वनस्पतिकाय में अनन्ता उपजे।

21. **स्थिति-**

	जघन्य	**उत्कृष्ट**
पृथ्वीकाय की स्थिति✿	अन्तर्मुहूर्त	22 हजार वर्ष की।
अप्काय की स्थिति	अन्तर्मुहूर्त	7 हजार वर्ष की।
तेऊकाय की स्थिति	अन्तर्मुहूर्त	3 अहोरात्रि की।
वायुकाय की स्थिति	अन्तर्मुहूर्त	3 हजार वर्ष की।
वनस्पतिकाय की स्थिति	अन्तर्मुहूर्त	10 हजार वर्ष की।
असन्नी मनुष्य की स्थिति	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त की।

22. **मरण-** समोहया, असमोहया मरण- सभी दोनों प्रकार के मरण से मरते हैं।

23. **च्यवन-** जिस प्रकार उपपात द्वार (20 वाँ) है, उसी प्रकार कहना।

24. **गति आगति-** पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में तीन गति से आवे- तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देवगति। दो गति में जावे- तिर्यंच गति और मनुष्य गति में। दण्डक की अपेक्षा 23 दण्डक से आवे- नारकी वर्जकर। दस दण्डक में जावे - (5 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय, 1 तिर्यंच पंचेन्द्रिय और 1 मनुष्य) तेऊकाय और वायुकाय में दो गति से आवे- तिर्यंच गति और मनुष्य गति से और एक तिर्यंच गति में जावे। दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक से आवे (औदारिक के दस दण्डक उपर्युक्त) नव दण्डक में जावे (औदारिक के दस दण्डकों में से मनुष्य का वर्जकर) और असन्नी मनुष्य दो गति से आवे- तिर्यंच गति और मनुष्य गति से। दो गति में जावे- तिर्यंच गति और मनुष्य गति में। दण्डक की अपेक्षा आठ दण्डक से आवे - (1. पृथ्वीकाय, 2. अप्काय, 3. वनस्पतिकाय, 4-6 विकलेन्द्रिय के तीन, 7. तिर्यंच पंचेन्द्रिय और 8. मनुष्य से)। उपर्युक्त औदारिक के दस दण्डकों में जावे।

✦ लोक के चरमान्त में (निष्कूटों में) रहने वाले दसों सूक्ष्म स्थावरों में तथा बादर वायुकाय के अपर्याप्त-पर्याप्त, इस प्रकार 12 जीव के भेदों में ही व्याघात होता है, शेष में नहीं। अर्थात् वायु के अलावा सभी बादर एकेन्द्रिय जीव नियमा छहों दिशाओं से आहार लेते हैं।

✿ सूक्ष्म स्थावरों की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की ही होती है। यहाँ स्थिति बादर की अपेक्षा समझनी चाहिये।

25. **प्राण-** पाँच स्थावर में प्राण पावे चार- (स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण, काय बल प्राण, श्वासोच्छ्वास बल प्राण और आयुष्य बल प्राण) और असन्नी मनुष्य में प्राण पावे- सात से कुछ अधिक (पाँच इन्द्रिय के पाँच, काय बल, श्वासोच्छ्वास (अपूर्ण) और आयुष्य बल प्राण)।

26. **योग-** पाँच स्थावर और असन्नी मनुष्य में योग पावे-एक काया का।

तीन विकलेन्द्रिय और पाँच असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय

1. **शरीर-** तीन विकलेन्द्रिय और पाँच असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में शरीर पावे तीन- औदारिक, तैजस और कार्मण।

2. **अवगाहना-** सभी की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, बेइन्द्रिय की उत्कृष्ट 12 योजन, तेइन्द्रिय की 3 गाउ (कोस) और चौरेन्द्रिय की 4 गाउ की।

असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पाँच भेद-

जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प। सभी की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट जलचर की 1000 योजन। स्थलचर की प्रत्येक (पृथक्त्व) गाउ। खेचर की प्रत्येक धनुष, उरपरिसर्प की प्रत्येक योजन और भुजपरिसर्प की प्रत्येक धनुष की।

3. **संहनन-** सभी में एक सेवार्त्तक संहनन।

4. **संस्थान-** सभी में एक हुण्डक संस्थान।

5. **कषाय-** सभी में चारों ही कषाय।

6. **संज्ञा-** सभी में चारों ही संज्ञा।

7. **लेश्या-** सभी में तीन-कृष्ण, नील और कापोत लेश्या।

8. **इन्द्रिय-** बेइन्द्रिय में दो- रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय। तेइन्द्रिय में तीन- उपर्युक्त दो व घ्राणेन्द्रिय। चौरेन्द्रिय में चार- उपर्युक्त तीन व चक्षुरिन्द्रिय। असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में पाँच- श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना और स्पर्शनेन्द्रिय।

9. **समुद्घात-** सभी में समुद्घात पावे तीन- वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक समुद्घात।

10. **सन्नी-** सभी असन्नी हैं।

11. **वेद-** सभी में नपुंसक वेद।

12. **पर्याप्ति-** सभी में पाँच पर्याप्ति (मन वर्जकर)।

13. **दृष्टि-** सभी में दो दृष्टि✦- सम्यग् और मिथ्यादृष्टि।

✦ तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के अपर्याप्ता में ही 2 दृष्टि होती है तथा 2 ज्ञान, 2 अज्ञान, 2 दर्शन ये 6 उपयोग होते हैं। पर्याप्ता में तो एक मिथ्यादृष्टि ही होती है तथा 2 अज्ञान, 2 दर्शन, ये 4 उपयोग ही होते हैं।

14. **दर्शन-** बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय में एक अचक्षु दर्शन। चौरेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में दो दर्शन-चक्षुदर्शन और अचक्षु दर्शन।

15. **ज्ञान-** सभी में दो ज्ञान- मतिज्ञान और श्रुतज्ञान।

16. **अज्ञान-** सभी में दो अज्ञान- मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान।

17. **योग-** सभी में योग पावे चार- व्यवहार वचन, औदारिक, औदारिक मिश्र और कार्मण काय योग।

18. **उपयोग-** बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय में पाँच उपयोग- दो ज्ञान, दो अज्ञान और एक अचक्षु दर्शन। चौरेन्द्रिय और पाँच असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में छह- उपर्युक्त पाँच व चक्षु दर्शन।

19. **आहार-** सभी छह दिशाओं से 288 भेद का लेते हैं।

20. **उपपात-** सभी में एक समय में जघन्य एक-दो-तीन यावत् संख्याता, उत्कृष्ट असंख्याता उत्पन्न होते हैं।

21. **स्थिति-** सभी की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट बेइन्द्रिय की 12 वर्ष, तेइन्द्रिय की 49 अहोरात्रि, चौरेन्द्रिय की छह माह की। असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पाँच भेद- जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प।

    इन पाँचों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट जलचर की एक करोड़ पूर्व, स्थलचर की 84 हजार वर्ष, खेचर की 72 हजार वर्ष, उरपरिसर्प की 53 हजार वर्ष और भुजपरिसर्प की 42 हजार वर्ष की।

22. **समोहया असमोहया मरण-** सभी दोनों प्रकार के मरण से मरते हैं।

23. **च्यवन-** सभी में एक समय में जघन्य 1-2-3 यावत् संख्याता, उत्कृष्ट असंख्याता च्यवे।

24. **गति आगति-** तीन विकलेन्द्रिय में दो गति से आवे और दो गति में जावे- तिर्यंच गति और मनुष्य गति। दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक से आवे और दस दण्डक में जावे- दस दण्डक औदारिक के। असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में दो गति से आवे- तिर्यंच गति और मनुष्य गति से और चार गति में जावे- (चारों गतियाँ) दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक से आवे (दस दण्डक औदारिक के) और 22 दण्डक में जावे- ज्योतिषी और वैमानिक ये दो दण्डक वर्जकर।

25. **प्राण-** बेइन्द्रिय में प्राण पावे छह- रसनेन्द्रिय बल प्राण, स्पर्शनेन्द्रिय बल, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास बल और आयुष्य बल प्राण। तेइन्द्रिय में प्राण पावे सात- उपर्युक्त छह एवं घ्राणेन्द्रिय बल प्राण। चौरेन्द्रिय में प्राण पावे आठ- उपर्युक्त सात व चक्षुरिन्द्रिय बल प्राण। असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में प्राण पावे नव- उपर्युक्त आठ व श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण।

26. **योग-** सभी में योग पावे दो- वचन और काय योग।

सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय

1. **शरीर-** सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में शरीर पावे चार- औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण।
2. **अवगाहना-** सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पाँच भेद- जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प। सभी की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट जलचर की 1000 योजन, स्थलचर की 6 गाउ, खेचर की प्रत्येक धनुष, उरपरिसर्प की 1000 योजन और भुजपरिसर्प की प्रत्येक गाउ की।

    सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय वैक्रिय लब्धि का प्रयोग करे तो अवगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग, उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ (जघन्य 200 उत्कृष्ट 900) योजन।✦
3. **संहनन-** छहों संहनन।
4. **संस्थान-** छहों संस्थान।
5. **कषाय-** चारों कषाय।
6. **संज्ञा-** चारों संज्ञा।
7. **लेश्या-** छहों लेश्या।
8. **इन्द्रिय-** पाँचों इन्द्रियाँ।
9. **समुद्घात-** समुद्घात पावे पाँच- वेदनीय, कषाय, मारणान्तिक, वैक्रिय और तैजस।
10. **सन्नी-** सभी सन्नी है, असन्नी नहीं।
11. **वेद-** तीनों वेद।
12. **पर्याप्ति-** छहों पर्याप्ति।
13. **दृष्टि-** तीनों दृष्टि।
14. **दर्शन-** दर्शन पावे तीन - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन।
15. **ज्ञान-** ज्ञान पावे तीन - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान।
16. **अज्ञान-** तीनों अज्ञान।
17. **योग-** योग पावे 13- 4 मन के, 4 वचन के और 5 काया के- औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रिय, वैक्रिय मिश्र और कार्मण काययोग।
18. **उपयोग-** उपयोग पावे नौ- तीन ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शन।
19. **आहार-** आहार 288 भेद का छहों दिशाओं से।
20. **उपपात-** एक समय में जघन्य 1-2-3 यावत् संख्याता, उत्कृष्ट असंख्याता उपजे।
21. **स्थिति-** सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पाँच भेद- जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प।

    सभी की स्थिति जघन्य-अन्तर्मुहूर्त। उत्कृष्ट-जलचर की एक करोड़ पूर्व। स्थलचर की तीन पल्योपम। खेचर की पल्योपम के असंख्यातवें भाग। उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प की एक-एक करोड़ पूर्व की।

✦ करोड़ पूर्व या इससे कम स्थिति वाले सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय पर्याप्त ही वैक्रिय लब्धि का प्रयोग कर सकते हैं, इससे ऊपर की स्थिति वाले नहीं।

22. **मरण**- समोहया असमोहया दोनों प्रकार के मरण से मरते हैं।

23. **च्यवन**- एक समय में जघन्य 1-2-3 यावत् संख्याता, उत्कृष्ट असंख्याता च्यवे।

24. **गति**- चारों गति और चौबीस दण्डक से आते हैं और चारों गति, चौबीस दण्डक में जाते हैं।

25. **प्राण**- प्राण पावे दसों ही।

26. **योग**- योग पावे तीनों ही।

गर्भज मनुष्य

1. **शरीर**- पाँचों ही।

2. **अवगाहना**- जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग। उत्कृष्ट तीन गाउ की।

काल के अनुसार अवसर्पिणी काल में गर्भज मनुष्यों की अवगाहना इस प्रकार है-

पहले आरे के आरम्भ में	तीन गाउ
पहला पूर्ण होते और दूसरे के आरम्भ में	दो गाउ
दूसरा पूर्ण होते और तीसरे के आरम्भ में	एक गाउ
तीसरा पूर्ण होते और चौथे के आरम्भ में	पाँच सौ धनुष
चौथा उतरते और पाँचवाँ लगते	सात हाथ
पाँचवाँ उतरते और छठा लगते	दो हाथ✦
छठा आरा उतरते	एक हाथ

यह उत्कृष्ट अवगाहना है। जघन्य अवगाहना उत्पत्ति के समय अंगुल के असंख्यातवें भाग है। पहले से तीसरे आरे तक के युगलिकों की जघन्य अवगाहना उत्कृष्ट से देशऊणी (कुछ कम) होती है और उत्कृष्ट अवगाहना पूरी होती है।

उत्सर्पिणी काल की अवगाहना का क्रम इससे उल्टा होता है। यदि मनुष्य वैक्रिय करे तो अवगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक लाख योजन झाझेरी।*

3. **संहनन**- छहों।

✦ जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति द्वितीय वक्षस्कार में अवसर्पिणी के पाँचवें आरे में बहुत हाथ की अवगाहना बताई है और छठे आरे के अन्त तक उत्कृष्ट एक हाथ की अवगाहना बताई है। इन आधारों से पाँचवें आरे के उतरते व छठा आरा लगते 2 हाथ की और छठा आरा उतरते एक हाथ की अवगाहना मनुष्य की समझी जाती है। जैन धर्म का मौलिक इतिहास (पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. द्वारा रचित) भाग 1, पृष्ठ 685 तृतीय संस्करण में पाँचवाँ आरा उतरते व छठा लगते 2 हाथ तथा इसी के पृष्ठ 687 में छठा आरा उतरते 1 हाथ की अवगाहना मनुष्य की बताई है। टीका ग्रंथों में पाँचवाँ आरा उतरते एक हाथ की अवगाहना भी उपलब्ध होती है। जैन तत्त्व प्रकाश, पृष्ठ 100 पर एक हाथ की, 'कल्पलता व्याख्या' पृष्ठ 10 पर 'नराणां एक हस्त प्रमाण शरीरं' आदि उपलब्ध है। जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष में दिगम्बर मान्यता के अनुसार 3 अथवा 3½ हाथ का उल्लेख है। प्रवचन सारोद्धार द्वार 160, गाथा 1037 पर दो हाथ का भी उल्लेख है। 'तत्त्व केवली गम्य'

* करोड़ पूर्व या इससे कम की स्थिति वाले सन्नी पर्याप्त मनुष्य ही वैक्रिय शरीर कर सकते हैं। इससे ऊपर की स्थिति वाले विक्रिया नहीं करते हैं।

4. **संस्थान**- छहों।

5. **कषाय**- चारों और अकषायी भी।

6. **संज्ञा**- चारों और नो संज्ञा बहुता भी।

7. **लेश्या**- छहों और अलेशी भी।

8. **इन्द्रिय**- पाँचों और अनिन्द्रिय भी।

9. **समुद्घात**- सातों।

10. **संज्ञी**- संज्ञी है, असंज्ञी नहीं और नो सन्नी नो असन्नी भी।

11. **वेद**- तीनों, अवेदी भी।

12. **पर्याप्ति**- छहों।

13. **दृष्टि**- तीनों।

14. **दर्शन**- चारों।

15. **ज्ञान**- पाँचों ज्ञान।

16. **अज्ञान**- तीनों अज्ञान।

17. **योग**- पन्द्रह और अयोगी भी।

18. **उपयोग**- बारह सभी।

19. **आहार**- छहों दिशा से 288 बोलों का आहार लेते हैं और अनाहारक भी।

20. **उपपात**- जघन्य 1-2-3 उत्कृष्ट-संख्याता।

21. **स्थिति**- जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन पल्योपम। काल की अपेक्षा अवसर्पिणी काल में-

पहले आरे के प्रारम्भ में	3 पल्योपम।
पहला उतरते और दूसरा लगते	2 पल्योपम।
दूसरा उतरते और तीसरा लगते	1 पल्योपम।
तीसरा उतरते और चौथा लगते	1 करोड़ पूर्व।✦
चौथा उतरते और पाँचवा लगते	एक सौ वर्ष झाझेरी।
पाँचवा उतरते और छठा लगते	20 वर्ष।
छठा आरा उतरते	16 वर्ष।

✦ करोड़ पूर्व से अधिक व पाँच सौ धनुष से अधिक अवगाहना वाले युगलिक होते हैं। अवसर्पिणी के प्रथम, द्वितीय (सम्पूर्ण) और तृतीय आरक का बहुभाग तथा उत्सर्पिणी के चौथे (बहुभाग) पाँचवें व छठे आरक में कर्मभूमि में, अकर्मभूमि के समान भाव होते हैं।

यह उत्कृष्ट स्थिति बतलाई गई है। तीसरे आरे तक के मनुष्यों की जघन्य स्थिति उत्कृष्ट से देश-ऊणी (कुछ कम) होती है। उत्सर्पिणी काल में इससे उल्टी होती है।

22. **मरण-** समोहया और असमोहया दोनों प्रकार का मरण।

23. **च्यवन-** जघन्य 1, 2, 3 उत्कृष्ट संख्याता।

24. **गति आगति-** आगति- चार गति और 22 दण्डक से (तेऊ वायु के वर्जकर)। गति- चारों और सिद्ध गति और 24 दण्डकों में।

25. **प्राण-** दसों।

26. **योग-** तीनों और अयोगी भी।

युगलिक मनुष्य

युगलिक मनुष्यों के भेद- 5 हेमवत, 5 ऐरण्यवत, 5 हरिवास, 5 रम्यक्वास, 5 देवकुरु, 5 उत्तरकुरु और 56 अन्तर्द्वीपज, ये कुल 86 भेद।

1. **शरीर-** तीन- औदारिक, तैजस और कार्मण।

2. **अवगाहना-** हेमवत और ऐरण्यवत में एक गाउ।

   - हरिवास और रम्यक्वास में दो गाउ।
   - देवकुरु और उत्तरकुरु में तीन गाउ।
   - अन्तर्द्वीप में आठ सौ धनुष।

   इनमें जघन्य देशऊणी✦ और उत्कृष्ट परिपूर्ण होती है।

3. **संहनन-** वज्रऋषभ नाराच संहनन।

4. **संस्थान-** समचौरस संस्थान।

5. **कषाय-** चारों।

6. **संज्ञा-** चारों।

7. **लेश्या-** कृष्ण, नील, कापोत और तेजोलेश्या।

8. **इन्द्रिय-** पाँचों।

9. **समुद्घात-** तीन-वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक।

10. **सन्नी-** सन्नी ही हैं, असन्नी नहीं।

11. **वेद-** दो- स्त्रीवेद, पुरुषवेद।

✦ यहाँ पर युगलिक मनुष्यों की अवगाहना-जघन्य व उत्कृष्ट दोनों ही उनके यौवनावस्था की अपेक्षा से बतलाई गयी है। जन्म की अपेक्षा तो जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग ही होती है।

12. पर्याप्ति- छहों।

13. दृष्टि- 30 अकर्म भूमि में दो दृष्टि- 1. सम्यग् दृष्टि, 2. मिथ्या दृष्टि और 56 अन्तर्द्वीपों में एक मिथ्या दृष्टि।

14. दर्शन- दो- चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन।

15. ज्ञान- 30 अकर्मभूमि में दो ज्ञान- मतिज्ञान और श्रुतज्ञान। अन्तर्द्वीपों में ज्ञान नहीं।

16. अज्ञान- 30 अकर्म भूमि में मति और श्रुत दो अज्ञान। 56 अन्तर्द्वीपों में भी मति और श्रुत ये दो अज्ञान।

17. योग- ग्यारह- 4 मन के, 4 वचन के और 3 काया के- औदारिक, औदारिक मिश्र और कार्मण काय योग।

18. उपयोग- 30 अकर्म भूमि में छह- दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन। 56 अन्तर्द्वीपों में उपयोग चार- दो अज्ञान और दो दर्शन।

19. आहार- सभी युगलिक छहों दिशा से 288 भेदों का आहार लेते हैं।

20. उपपात- जघन्य 1-2-3 उत्कृष्ट संख्याता।

21. स्थिति-

5 हेमवत और 5 ऐरण्यवत की स्थिति	एक पल्योपम।
5 हरिवास और 5 रम्यक्वास की स्थिति	दो पल्योपम।
5 देवकुरु और 5 उत्तरकुरु की स्थिति	तीन पल्योपम।

56 अन्तर्द्वीपों की स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग।

इनमें जघन्य स्थिति कुछ कम और उत्कृष्ट पूर्ण होती है।

22. मरण- समोहया असमोहया दोनों प्रकार का मरण।

23. च्यवन- जघन्य 1, 2, 3 उत्कृष्ट संख्याता।

24. गति आगति- आगति 2- तिर्यंच और मनुष्य से। **गति-** एक- देवगति में। दण्डक की अपेक्षा-तीस अकर्म भूमि की आगति दो दण्डक से- मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय से। **गति-** दण्डक 13 में- 10 भवनपति, 1 वाणव्यन्तर, 1 ज्योतिषी और 1 वैमानिक में।

छप्पन अन्तर्द्वीपों में आगति दण्डक 2 और गति दण्डक 11 में- 10 भवनपति और 1 वाणव्यन्तर में।

25. प्राण- दसों।

26. योग- तीनों।

सिद्ध भगवान

1. **शरीर-** शरीर नहीं- अशरीरी हैं।
2. **अवगाहना-** आत्म- प्रदेशों की अवगाहना जघन्य एक हाथ आठ अंगुल, मध्यम चार हाथ सोलह अंगुल✦ और उत्कृष्ट 333 धनुष- 32 अंगुल।
3. **संहनन-** नहीं।
4. **संस्थान-** नहीं।
5. **कषाय-** नहीं।
6. **संज्ञा-** नहीं।
7. **लेश्या-** नहीं।
8. **इन्द्रिय-** नहीं।
9. **समुद्घात-** नहीं।
10. **सन्नी-** नहीं।
11. **वेद-** नहीं।
12. **पर्याप्ति-** नहीं।
13. **दृष्टि-** एक सम्यग्दृष्टि।
14. **दर्शन-** एक केवलदर्शन।
15. **ज्ञान-** एक केवलज्ञान।
16. **अज्ञान-** नहीं।
17. **योग-** नहीं।
18. **उपयोग-** दो- केवलज्ञान और केवलदर्शन।
19. **आहार-** नहीं।
20. **उपपात-** एक समय में जघन्य 1-2-3 उत्कृष्ट 108 सिद्ध होवे।
21. **स्थिति-** एक सिद्ध भगवान की अपेक्षा सादि अनन्त और सभी सिद्ध भगवन्तों की अपेक्षा अनादि अनन्त।
22. **मरण-** नहीं।

✦ यह मध्यम अवगाहना तीर्थंकरों की अपेक्षा जघन्य अवगाहना समझनी चाहिये, जबकि साधारण केवलियों की अपेक्षा यह मध्यम है।

23. **च्यवन-** नहीं।

24. **गति आगति-** आगति-मनुष्य गति और एक दण्डक से, गति नहीं।

25. **प्राण-** द्रव्य प्राण नहीं, भाव प्राण 4 हैं- ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति।

26. **योग-** नहीं।

।। लघुदण्डक का थोकड़ा समाप्त ।।

अनादि मिथ्यात्वी के सम्यक्त्व प्राप्ति की संक्षिप्त प्रक्रिया

योग्यता :- भवी जीव हो, शुक्ल पक्षी हो, चारों गति में सन्नी पंचेन्द्रिय हो, पर्याप्तक हो, मन्द कषायी हो, गुण-दोषों के विचार से युक्त हो, मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंगज्ञान इन तीन में से किसी एक साकार उपयोग में वर्तमान हो, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला और स्त्यानर्द्धि इन तीन प्रकृतियों का उदय जिसके नहीं हो, जागृत हो, भावों की अपेक्षा से तीन शुभ लेश्याओं में प्रवृत्त हो, परावर्त्तमान शुभ प्रकृतियों को बांधने वाला हो, ऐसा जीव सम्यक्त्व प्राप्ति के योग्य होता है।

लब्धियाँ -

पंचसंग्रह भाग 9 के पृष्ठ संख्या 6 के अनुसार सम्यक्त्व प्राप्ति की योग्यता वाला जीव निम्नांकित 3 लब्धियों से सम्पन्न होता है-

1. **उपशमलब्धि** - मिथ्यात्व मोहनीय के दलिकों को सर्वथा उपशान्त करने की शक्ति वाला हो।
2. **उपदेशलब्धि** - गुरु से उपदेश सुनने की शक्ति वाला हो, जिसमें कदाग्रह न हो, वही उपदेश सुनने की योग्यता वाला होता है।
3. **प्रायोग्य लब्धि** - मनोयोग, वचनयोग और काय योग में से कोई भी एक योग में उपयोग हो, अन्तरंग कारणभूत अनुकम्पादि विशिष्ट गुण वाला हो।

लब्धिसार ग्रन्थ के अनुसार सम्यक्त्व प्राप्ति के पूर्व पाँच लब्धियाँ प्राप्त करना आवश्यक है। उन लब्धियों का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है-

1. **क्षयोपशम लब्धि** - कर्मों की अशुभ प्रकृतियों के अनुभाग को प्रति समय अनन्त गुणा हीन करना।
2. **विशुद्धि लब्धि** - कर्मों की शुभ प्रकृतियों के अनुभाग में प्रति समय अनन्त गुणी वृद्धि करना।
3. **देशना लब्धि** - तीर्थंकर, गणधर, आचार्य, उपाध्याय, साधु-साध्वी आदि गुरूजनों से नवतत्त्व व षट्द्रव्यों के वास्तविक स्वरूप का बोध प्राप्त करना।
4. **प्रायोग्य लब्धि** - आयुकर्म के सिवाय शेष 7 कर्मों की स्थिति-सत्ता को घटाकर अन्तः कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण करना।
5. **करण लब्धि** - जीव के परिणाम विशेष को करण कहते हैं। इस लब्धि में जीव निम्नांकित तीन करण करता है। ये करण करना श्वेताम्बर, दिगम्बर सभी मानते हैं।
   - A. **यथाप्रवृत्त करण** - जैसे पर्वतीय नदी में कोई पत्थर पानी के बहाव के साथ रगड़ खाता हुआ गोल चिकना पत्थर बन जाता है, उसी प्रकार से जिन अध्यवसायों की विशुद्धि से, अकाम निर्जरा करते-करते मिथ्यात्व (राग-द्वेष) की गूढ एवं दुर्भेद्य ग्रन्थि के समीप पहुँच जाता है, उसे यथाप्रवृत्त करण कहते हैं। इसे ग्रन्थि-देश की प्राप्ति भी कहते हैं। इसका दूसरा नाम पूर्वप्रवृत्त करण अथवा अधःप्रवृत्तकरण भी कहा जाता है। यह करण अभवी जीव भी अनन्त बार प्राप्त कर लेता है।
   - B. **अपूर्वकरण** - जीव को ऐसे विशुद्ध परिणाम पहले कभी नहीं आये हो, उन्हें अपूर्वकरण कहते हैं। इसमें चार बातें अपूर्व होती हैं- 1. स्थिति घात, 2. रस घात, 3. गुण श्रेणि, 4. अपूर्व स्थिति बन्ध। इस करण में भवी जीव ही प्रवेश करता है, अभवी नहीं। इस करण में मिथ्यात्व की तीव्र परिणाम रूप ग्रन्थि का भेदन कर देता है, उसे ग्रन्थि-भेद कहते हैं। इसका दूसरा नाम निवृत्तिकरण भी है। इस करण में प्रवेश किया हुआ जीव अवश्य ही समकित को प्राप्त करता है।
   - C. **अनिवृत्तिकरण** - इस करण में सम-समयवर्ती त्रैकालिक जीवों के परिणामों में समानता होती है। प्रतिसमय परिणामों में अनन्तगुणी विशुद्धि निरन्तर बढ़ती रहती है। इस करण के बहुत संख्यात भाग बीतने पर तथा

एक संख्यात भाग शेष रहने पर जीव मिथ्यात्व के दलिकों का अन्तरकरण (दलिक रहित विशुद्ध भूमि तैयार करना) करता है।

मिथ्यात्व मोहनीय के दलिकों का अन्तरकरण

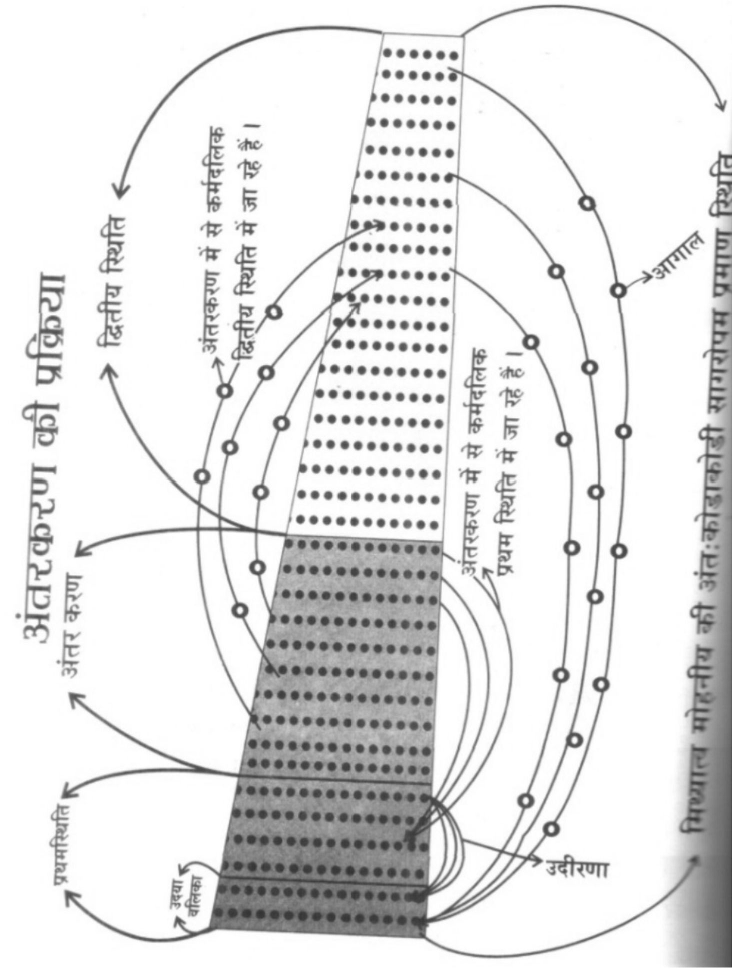

अन्तरकरण की क्रिया में मिथ्यात्व मोहनीय की दो स्थितियाँ बनाता है। प्रथम स्थिति और द्वितीय स्थिति। एक अन्तर्मुहूर्त में जो उदय में लाकर भोगी जा सके, उसे प्रथम स्थिति कहते हैं। एक अन्तर्मुहूर्त के बाद उदय में आने योग्य सत्ता में स्थित दर्शन मोहनीय की स्थिति को द्वितीय स्थिति कहते हैं।

प्रथम स्थिति के मिथ्यात्व मोहनीय के दलिकों को उदय में लाकर उनकी निर्जरा करते-करते जब अन्तिम दलिक का वेदन किया जाता है तब जीव अन्तरकरण में प्रवेश करता है, उस समय **A.** द्वितीय स्थिति में रहे हुए मिथ्यात्व मोहनीय के दलिकों के अनुभाग को अपने विशुद्ध परिणामों से तीन भागों में बांटकर त्रिपुंज करना प्रारंभ करता है, **B.** साथ ही मिथ्यात्व मोहनीय के दलिकों का मिश्र मोहनीय तथा समकित मोहनीय में गुण संक्रमण भी प्रारंभ कर देता है। **C.** त्रिपुंज किये गये दलिकों में से कुछ दलिकों का असख्यात गुणे क्रम से प्रति समय उपशम भी करता रहता है। इस प्रकार से प्रथम स्थिति के मिथ्यात्व मोहनीय के दलिकों की निर्जरा कर देने के साथ ही वह उपशम समकित को प्राप्त कर लेता है। इस समकित के प्राप्त होते ही जीव को अपूर्व आत्मिक उल्लास एवं आनन्द की प्राप्ति होती है। उपर्युक्त लब्धियों व करणों में अन्तर्मुहूर्त-अन्तर्मुहूर्त का काल लगता है, कुल मिलाकर भी अन्तर्मुहूर्त ही काल लगता है।

उक्त विवेचन कार्मग्रन्थिक मतानुसार समझना चाहिए, क्योंकि इनके मतानुसार अनादि मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम बार चतुर्थ गुणस्थान में आकर उपशम समकित (प्रथमोपशम) प्राप्त करता है।

सैद्धान्तिक मतानुसार (विशेषावश्यक भाष्य, बृहत्कल्प भाष्य, हारिभद्रीय आवश्यक वृत्ति, मलयगिरी वृत्ति, प्रवचन सारोद्धार आदि) अनादि का मिथ्यात्वी जीव प्रथम बार उपशम अथवा क्षयोपशम समकित प्राप्त कर सकता है।

क्षयोपशम समकित की प्राप्ति - जो जीव यथाप्रवृत्त करण करने के बाद अपूर्वकरण में प्रवेश करता है, वहाँ अपूर्वकरण में परिणामों में तीव्र विशुद्धि आ जाने पर उसी समय मिथ्यात्व मोहनीय के दलिकों का त्रिपुंज कर लेता है। उसके बाद अनिवृत्तिकरण को करता हुआ अन्तरकरण किये बिना ही क्षयोपशम समकित को प्राप्त कर लेता है।

उपशम समकित की प्राप्ति – जिन अनादि मिथ्यादृष्टि भवी जीवों के अपूर्वकरण में तीव्र विशुद्धि नहीं होती, वे जीव वहाँ पर त्रिपुंज नहीं करते हैं तथा अनिवृत्तिकरण में आकर अन्तरकरण कर लेते हैं। प्रथम व द्वितीय स्थिति बनाते हैं। इन दोनों के बीच में अन्तर्मुहूर्त काल तक के लिए विशुद्ध भूमि, दलिक रहित भूमि तैयार कर लेते हैं। प्रथम स्थिति के दलिकों को उदय में लाकर निर्जरा कर देते हैं तथा द्वितीय स्थिति के मिथ्यात्व के दलिकों का बिना त्रिपुंज किये उपशम करना प्रारंभ कर देते हैं। ऐसे जीवों को प्रथमोपशम समकित प्राप्त होती है। बिना त्रिपुंज के उपशम समकित प्राप्त करने वाले होने से ये चतुर्थ गुणस्थान से आगे नहीं बढ़ पाते, इन्हें वापस नीचे मिथ्यात्व में आना ही पड़ता है।

बिना त्रिपुंज के समकित प्राप्त करने वाले अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के मोहनीय कर्म की 26 प्रकृतियों की ही सत्ता रहती है, जबकि त्रिपुंज करने वाले जीवों के 28 प्रकृतियों की (मिश्र मोह व समकित मोह बड़ी) सत्ता हो जाती है। त्रिपुंज किया हुआ जीव ही क्षयोपशम से क्षायिक समकित को प्राप्त कर सकता है। त्रिपुंज किया हुआ प्रथमोपशम वाला जीव भी क्षयोपशम समकित को प्राप्त करके द्वितीयोपशम को अथवा क्षायिक समकित को प्राप्त कर सकता है।

गुणस्थान स्वरूप

गुणस्थानों[1] पर उनतीस द्वार हैं। वे इस प्रकार हैं – 1. नाम 2. लक्षण 3. स्थिति 4. क्रिया 5. सत्ता 6. बंध 7. उदय 8. उदीरणा 9. निर्जरा 10. भाव 11. कारण 12. परीषह 13. आत्मा 14. जीव के भेद 15. गुणस्थान 16. योग 17. उपयोग 18. लेश्या 19. हेतु 20. मार्गणा 21. ध्यान 22. दण्डक 23. जीवयोनि 24. निमित्त 25. चारित्र 26. आकर्ष 27. समकित 28. अन्तर और 29. अल्पबहुत्व।

1. नाम द्वार

गुणस्थानों के नाम – 1. मिथ्यात्व 2. सास्वादन 3. सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्र) 4. अविरत सम्यग्दृष्टि 5. विरताविरत (देशविरति) 6. प्रमत्त–संयत्त 7. अप्रमत्त–संयत 8. निवृत्ति–बादर 9. अनिवृत्ति–बादर 10. सूक्ष्म सम्पराय 11. उपशान्त मोहनीय 12. क्षीण–मोहनीय 13. सयोगी केवली और 14. अयोगी केवली गुणस्थान[2]।

2. लक्षण द्वार

1. **मिथ्यात्व गुणस्थान का लक्षण–** जिनेश्वर भगवान की वाणी न्यूनाधिक या विपरीत श्रद्धे या प्ररूपे, जिन–मार्ग पर दुष्ट परिणाम रखे, हिंसा में धर्म माने या प्ररूपे, कुदेव कुगुरु और कुशास्त्र पर आस्था रखे। अथवा तत्त्व श्रद्धा के अभाव रूप जीव के ऐसे भाव को पहला – 'मिथ्यात्व गुणस्थान' कहते हैं।

    फल– कर्म रूपी डंडे से आत्मा रूपी गेंद, चार गति चौबीस दण्डक और चौरासी लाख जीव–योनियों में बारम्बार परिभ्रमण कर दु:ख भोगती रहती है।

    जितने जीव मोक्ष जाते हैं, अव्यवहार राशि[3] (सूक्ष्मनिगोद अर्थात् सूक्ष्म वनस्पति, बादर निगोद अर्थात् साधारण वनस्पति) से उतने ही जीव व्यवहार राशि[4] में आते हैं।[5] जब अर्धपुद्गल परावर्तन काल संसार परिभ्रमण शेष रहता है। तब से वह मिथ्यादृष्टि भव्य जीव शुक्ल पक्षी कहलाता है। इसको हम एक व्यावहारिक दृष्टान्त से इस प्रकार समझ सकते हैं। जैसे किसी को एक करोड़ रुपया ऋण चुकाना था, उसने उसमें से निन्यानवें लाख निन्यानवें हजार नौ सौ निन्यानवें रुपये आठ आने (99,99,999॥) तो चुका दिये, केवल आधा रुपया देना शेष रहा। उसी प्रकार इस जीव का अर्द्ध पुद्गल परावर्तन संसार परिभ्रमण शेष रहा। अर्थात् शुक्लपक्षी हो गया। यहाँ से अनादि मिथ्यादृष्टि पहली बार सीधा चतुर्थ गुणस्थान में ही जायेगा। (शुक्लपक्षी होने के बाद जघन्य अन्तर्मुहूर्त में तथा उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल में समकित अवश्य प्राप्त करता है) दूसरे से लेकर आगे के सभी गुणस्थानों में जीव शुक्लपक्षी ही होता है।

2. **सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान का लक्षण–** उपशम सम्यक्त्वी के अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय होने से व दर्शन त्रिक का उपशम कायम रहने से सम्यक्त्व की आस्वाद मात्र जो अवस्था बनती है, उसे सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान कहते हैं। उपशम समकित के लाभ को जो बाधा पहुँचाता है, विराधना करता है, इसलिये इसे सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान भी कहते हैं। जैसे– किसी ने खीर का भोजन किया और बाद में

---

1 आत्मा के ज्ञान–दर्शन–चारित्र आदि गुणों की शुद्धि–अशुद्धि और उत्कर्ष–अपकर्ष अवस्था के वर्गीकरण को 'गुणस्थान' कहते हैं।

2 कम्मविसोहिमग्गणं पडुच्च चउद्दस जीवट्ठाणा पण्णत्ता तं जहा– .... समवाओ सं.14

3 जिन जीवों ने एक बार भी निगोद (सूक्ष्म वनस्पति व साधारण वनस्पति इन दोनों के अपर्याप्त व पर्याप्त) अवस्था छोड़कर दूसरी जगह जन्म नहीं लिया हो, वे अव्यवहार राशि के जीव हैं।

4 जिन्होंने निगोद को छोड़कर दूसरी जगह एक बार भी जन्म ग्रहण कर लिया है, वे सभी व्यवहार राशि के जीव हैं।

5 सिज्झंति जत्तिया किर, इह संववहार जीव रासिओ।
एंति अणाइ वण्णस्सई, रासीओ तेत्तिया तम्मि ॥

विशेषणवती– विशेष 15, गाथा 60.

वमन कर दिया, तो उसे कुछ गुड़चटा स्वाद रहता है। इसी प्रकार प्राप्त सम्यक्त्व को छोड़ कर मिथ्यात्व में प्रवेश करने के पूर्व की दशा में जो अवस्था होती है, उसे 'सास्वादन'[6] गुणस्थान कहते हैं। अथवा जैसे– घंटे से गंभीर शब्द निकल चुकने के बाद उसकी रणकार (प्रतिध्वनि) रह जाती है, उसके समान, अथवा आत्मा रूपी आम्र–वृक्ष की परिणाम रूपी डाली से, मोह रूपी वायु चलने से, समकित रूपी फल टूट गया, परन्तु मिथ्यात्व रूपी पृथ्वी पर नहीं पहुँचा। वह बीच ही में हैं, तब तक के परिणामों को 'सास्वादन गुणस्थान' कहते हैं।

3. **सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्र) गुणस्थान का लक्षण–** यह गुणस्थान मिश्र मोहनीय प्रकृति के उदय से होता है। सम्यक्त्व और मिथ्यात्व से मिश्रित[7], श्रीखंड के समान मीठे और खट्टे स्वाद जैसा।

पंच संग्रह और कर्मग्रंथ में मिलने वाला नालिकेर द्वीप के मनुष्य का दृष्टान्त इस प्रकार है– जिस द्वीप में खाने के लिये सिर्फ नारियल ही होते हैं, उसे नालिकेर द्वीप कहते हैं। वहाँ के मनुष्यों ने न अन्न को देखा है, न उसके विषय में कुछ सुना ही है, अतएव उनको अन्न में रुचि नहीं होती और न द्वेष ही होता है। इसी प्रकार जब मिश्र मोहनीय कर्म का उदय रहता है, तब जीव को जैन धर्म में प्रीति नहीं होती और अप्रीति भी नहीं होती अर्थात् श्री वीतराग ने जो धर्म कहा है वही सच्चा है, इस प्रकार एकान्त श्रद्धा रूप प्रेम नहीं होता और वह धर्म झूठा है, अविश्वसनीय है इस प्रकार अरुचि रूप द्वेष भी नहीं होता। दूसरे शब्दों में सम्यक्त्व व मिथ्यात्व में तटस्थ वृत्ति होती है।

4. **अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान का लक्षण–** सात प्रकृतियों का क्षयोपशम आदि करने पर जीव की जो अवस्था होती है, उसे चौथा 'अविरत–सम्यग्दृष्टि गुणस्थान' कहते हैं। वे सात प्रकृतियाँ हैं– 1. अनन्तानुबन्धी क्रोध 2. मान 3. माया 4. लोभ 5. मिथ्यात्वमोहनीय 6. मिश्रमोहनीय 7. समकितमोहनीय। कुदेव, कुगुरु, कुधर्म कुशास्त्र की आस्था रखना– 'मिथ्यात्व मोहनीय' है। जिस कर्म के उदय से सम्यक्त्व एवं मिथ्यात्व से मिश्रित परिणाम हो अथवा इनमें तटस्थ वृत्ति हो, उसे 'मिश्र मोहनीय' कहते हैं। जिस प्रकार कूटे हुए कोद्रव धान्य के छिलकों में मादक शक्ति पूर्ण नहीं होती, उसी प्रकार जिस कर्म के द्वारा सम्यक्त्व गुण का पूर्ण घात तो न हों, परन्तु उसमें चल[8] मल[9] अगाढ़[10] दोष उत्पन्न हों, उसे 'सम्यक्त्वमोहनीय' कहते हैं।

चौथे गुणस्थान में आया हुआ जीव जीवादिक नौ पदार्थों का जानकार होता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का जानकार होवे, नवकारसी आदि वर्षीतप को उपादेय जाने, श्रद्धा करे, प्ररूपणा करे, परन्तु पालन नहीं कर सकता, क्योंकि अविरत है।

फल– इस गुणस्थान में सात बोलों का बन्ध नहीं हो सकता – 1. नारकी 2. तिर्यंच 3. भवनपति 4. वाणव्यन्तर 5. ज्योतिषी 6. स्त्रीवेद और 7. नपुंसकवेद। यदि पहले बन्ध हो गया हो तो भोगना ही पड़ता है। जैसे श्रेणिक महाराजा को भोगना पड़ा। इस गुणस्थान से नीचे गिरने पर उक्त सात बोलों का बंध हो सकता है।अनन्तानुबन्धी चौक, मिथ्यात्व, मिश्र व समकित मोहनीय, इन सात प्रकृतियों के क्षयोपशम आदि से बनने वाले भंग इस प्रकार हैं–[11]

---

6 सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान उपशम समकित से गिरने वाले को ही आ सकता है, अन्य को नहीं। यह एक भव में दो बार से अधिक नहीं आ सकता व अनेक भवों की अपेक्षा भी पाँच बार से अधिक नहीं आता है।

7 मिश्र मोहनीय गुणस्थान अन्तर्मुहूर्त से अधिक नहीं रहता। इसमें न तो नवीन आयु का बन्ध होता है और न मरण होता है। सम्यक्त्व या मिथ्यात्व को प्राप्त होने के बाद ही आयु का बन्ध या मरण होता है।

8 श्री शान्तिनाथजी शान्ति करने में, पार्श्वनाथजी परिचय देने में समर्थ हैं, इस प्रकार अनेक विषयों में चलायमान होने को 'चल दोष' कहते हैं।

9 छद्मस्थपन की तरंग से सम्यक्त्व में मलिनता आ जाने को 'मल दोष' कहते हैं।

10 यह मेरा शिष्य है, यह उनका, इत्यादि भ्रम उत्पन्न करने वाले दोष को 'अगाढ़ दोष' कहते हैं। अगाढ़ अर्थात कुछ शिथिल।

11 पुराने थोकड़ों की पुस्तकों में वर्णित भंगों का आधार नहीं मिलने से उपलब्ध कर्म साहित्य आदि के अनुसार बनने वाले भंग दिये गये हैं।

उपशम समकित–

इसमें दर्शन मोहनीय के उपशम की नियमा है।

प्रथमोपशम–

1.(अ) चार का क्षयोपशम, 3 का उपशम (त्रिपुंज होने पर) – (गुणस्थान 4 से 7 तक, स्थिति– जघन्य–उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त)

(ब) चार का क्षयोपशम 1 (मिथ्यात्व) का उपशम (त्रिपुंज नहीं होने पर) (नियमा नीचे गिरेगा) गुणस्थान–चौथा[12] स्थिति – जघन्य–उत्कृष्ट, अन्तर्मुहूर्त।

द्वितीयोपशम–

2. सातों प्रकृतियों का उपशम– (4 से 11 गुणस्थान तक, स्थिति– जघन्य–उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त)
3. चार की विसंयोजना, तीन का उपशम– (4 से 11 गुणस्थान तक, स्थिति– जघन्य–उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त)

क्षायोपशमिक समकित–

इसमें समकित मोहनीय के उदय (विपाकोदय) की नियमा है।

सामान्य–

4. छः का क्षयोपशम, एक का वेदन– (4 से 7 गुणस्थान तक, स्थिति– जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट 66 सागरोपम झाझेरी)

द्वितीयोपशम प्राप्ति की प्रक्रिया– (जो वर्तमान में क्षयोपशम समकिती हैं, किन्तु बाद में उपशम समकित प्राप्त कर उपशम श्रेणि करेंगे उनकी अपेक्षा से निम्न भंग समझना)

5. चार का उपशम, 2 का क्षयोपशम, 1 का वेदन– (गुणस्थान 4 से 7 तक, स्थिति–जघन्य उत्कृष्ट–अन्तर्मुहूर्त)
6. 6 का उपशम, 1 का वेदन– (गुणस्थान 6, 7, स्थिति– जघन्य उत्कृष्ट–अन्तर्मुहूर्त)
7. 4 की विसंयोजना, 2 का क्षयोपशम, 1 का वेदन– (गुणस्थान 4 से 7 तक, स्थिति– जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट 66 सागरोपम झाझेरी) यदि जीव द्वितीयोपशम अथवा क्षायिक समकित प्राप्ति की प्रक्रिया आगे न करे तो इस भंग में उत्कृष्ट 66 सागरोपम झाझेरी भी स्थिति हो सकती है। यदि प्रक्रिया निरन्तर चलती रहे तो स्थिति जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की होती है।
8. 4 की विसंयोजना, 2 का उपशम, 1 का वेदन (गुणस्थान 6, 7, स्थिति– जघन्य, उत्कृष्ट–अन्तर्मुहूर्त)

क्षायिक प्राप्ति की प्रक्रिया– (जो वर्तमान में क्षयोपशम समकिती हैं, किन्तु बाद में क्षायिक समकित प्राप्त करेंगे, उस अपेक्षा से निम्न भंग समझना)

9. 4 का क्षय, 2 का क्षयोपशम, 1 का वेदन– (गुणस्थान 4 से 7 तक, स्थिति– जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त,
10. 5 का क्षय, 1 का क्षयोपशम, 1 का वेदन– (गुणस्थान 4 से 7 तक, स्थिति– जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त)
11. 6 का क्षय, 1 का वेदन– (गुणस्थान 4 से 7 तक, स्थिति– जघन्य–उत्कृष्ट–अन्तर्मुहूर्त)[13]

क्षायिक समकित–

12 विशेषावश्यक भाष्य के अनुसार।

13 इस भंग के अन्तिम एक समय को क्षायिक वेदक कहते हैं।

12. 7 का क्षय– (गुणस्थान 4 से 14 व सिद्ध, स्थिति– सादि अनन्त)

इन भंगों को निम्न चार्ट द्वारा भी सरलता से समझ सकते हैं–

उपशम

1. 4 का क्षयोपशम 3 का उपशम (कर्म सिद्धान्त के अनुसार)
2. 4 का क्षयोपशम 1 का उपशम (भाष्य के अनुसार निश्चित नीचे गिरेगा)
3. 4 का उपशम 3 का उपशम (7 का उपशम)
4. 4 की विसंयोजना 3 का उपशम

सास्वादन

1. 4 का उदय 3 का उपशम (उपशम समकित के पहले या तीसरे भंग से)
2. चार का उदय १ मिथ्यात्व का उपशम (उपशम समकित के दूसरे भंग से)

क्षयोपशम

1. 6 का क्षयोपशम 1 का वेदन

द्वितीयोपशम की प्रक्रिया

2. 4 का उपशम 2 का क्षयोपशम 1 का वेदन
3. 6 का उपशम 1 का वेदन
4. 4 की विसंयोजना 2 का क्षयोपशम 1 का वेदन
5. 4 की विसंयोजना 2 का उपशम 1 का वेदन

क्षायिक की प्रक्रिया

6. 4 का क्षय 2 का क्षयोपशम 1 का वेदन
7. 5 का क्षय 1 का क्षयोपशम 1 का वेदन
8. 6 का क्षय 1 का वेदन

क्षायिक समकित

1. 7 का क्षय

कठिन शब्दों के सामान्य अर्थ– (विशेष जानकारी के लिये छठे कर्मग्रन्थ के परिशिष्ट की व्याख्या देखनी चाहिए)

उपशम का अर्थ है– जिसमें सम्बन्धित कर्म प्रकृति का न तो विपाकोदय हो और न प्रदेशोदय हो, किन्तु कर्म प्रकृति सत्ता में विद्यमान रहे।

विपाकोदय का अर्थ है– अनुभूति में आने वाला उदय और **प्रदेशोदय** का अर्थ है– अनुभूति में नहीं आने वाला उदय।

क्षयोपशम का अर्थ है– जिसमें प्रदेशोदय तो हो, किन्तु विपाकोदय न हो। वर्तमान काल में सर्व घाति स्पर्धकों का देशघाति स्पर्धक के रूप में उदय आकर क्षय होना तथा आगामी काल की अपेक्षा उन्हीं का सदवस्था रूप का उपशम होना और देशघाति स्पर्धकों का उदय होना क्षयोपशम कहलाता है।

विसंयोजना का अर्थ है– जिसमें किसी भी प्रकार का उदय न हो, कर्म सत्ता में भी न हो, किन्तु कारण (मिथ्यात्व) उपस्थित होने पर जिसका पुनः बन्ध व उदय हो सके अर्थात् अस्थायी क्षय। विसंयोजना मात्र अनन्तानुबन्धी चौक की ही होती है।

प्रथमोपशम का अर्थ है– जो उपशम समकित ग्रन्थिभेद जन्य होती है तथा जिसमें जीव उपशम श्रेणि प्राप्त नहीं कर पाता है, चाहे वह पहली, दूसरी बार ही क्यों न प्राप्त हो।

द्वितीयोपशम का अर्थ है– जो उपशम समकित श्रेणि सहित प्राप्त हो, चाहे वह पहली, दूसरी, तीसरी बार ही क्यों न प्राप्त हो।

त्रिपुंज का अर्थ है– मिथ्यात्व मोहनीय के बन्ध को मिथ्यात्व (अशुद्ध) मिश्र (अर्द्ध शुद्ध) एवं समकित मोहनीय (विशुद्ध) के रूप में तीन टुकड़ों में विभाजित कर देना।

5. **विरताविरत (देशविरति) गुणस्थान का लक्षण–** पहले कही हुई सात प्रकृतियाँ और अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ एवं नो कषाय[14] के क्षयोपशमादि से जो गुणस्थान होता है, वह पाँचवाँ विरताविरत (देशविरति) गुणस्थान है। इस गुणस्थान में आया हुआ जीव, जीवादिक नौ पदार्थों का जानकार होता है। नवकारसी आदि से लेकर वर्षी तप आदि जानता है, श्रद्धान करता है, प्ररूपता है और शक्ति अनुसार प्रत्याख्यान करता है। एक प्रत्याख्यान से लेकर श्रावक के बारह व्रत, ग्यारह प्रतिमाएँ तक पालन करे यावत् मारणांतिक संलेखना संथारा अनशन करे।

   फल– इस गणुरस्थान का आराधक जीव, जघन्य तीसरे भव उत्कृष्ट सात–आठ अर्थात् पन्द्रह भवों में मोक्ष में जाता है। सात भव वैमानिक देवों के और आठ मनुष्य के करता है।

6. **प्रमत्तसंयत गुणस्थान का लक्षण–** दर्शन सप्तक के क्षयोपशमादि से, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ तथा नो कषाय[15] के क्षयोपशम से जो गुणस्थान हो, उसे छठा 'प्रमत्त–संयत[16] गुणस्थान' कहते हैं। इस गुणस्थान वाला नौ तत्त्व और द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव का जानकार होवे, नवकारसी आदि वर्षी तप जाने श्रद्धे प्ररूपे और पालन करे।

   फल– छठे गुणस्थान का आराधक जीव जघन्य उसी भव में और उत्कृष्ट सात–आठ भवों में मोक्ष जाता है।

7. **अप्रमत्त संयत गुणस्थान का लक्षण–** पाँच प्रमादों के छोड़ने से जो गुणस्थान हो, वह 'अप्रमत्तसंयत[17] गुणस्थान' है। पांच प्रमाद[18] – 1. मद्य 2. विषय 3. कषाय 4. निद्रा और 5. विकथा। इस गुणस्थान वाला, जीवादिक नौ तत्त्वों का तथा द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव का जानकार होवे, नवकारसी आदि तप जाने, श्रद्धा करे, प्ररूपणा करे और फरसे।

   फल– इस गुणस्थान का आराधक जघन्य उसी भव में, मध्यम तीसरे भव में और उत्कृष्ट सात–आठ भवों में मोक्ष जाता है।

8. **निवृत्ति बादर गुणस्थान का लक्षण–** जिस गुणस्थान में सम–समयवर्ती त्रैकालिक जीवों के परिणामों में निवृत्ति (भिन्नता) तथा बादर संज्वलन कषाय का उदय रहता है, उसे निवृत्ति बादर गुणस्थान कहते हैं।

---

14 इस गुणस्थान में हास्यादि षट्क और वेद के उदय में कमी स्पष्टतः परिलक्षित भी होती है और कम्मपयडी आदि ग्रन्थों के अनुसार इन प्रकृतियों के देशघाति (मन्द) अनुभाग से अधिक उदय सम्भव नहीं होता है। अतः इनका क्षयोपशम कहा जाता है। इनके क्षयोपशम की भिन्नता से ही विरताविरत के असंख्यात स्थान बनते हैं।

15 संज्वलन चौक एवं नो कषाय के क्षयोपशम की भिन्नता से ही संयम के असंख्यात स्थान बनते हैं।

16 इस गुणस्थान में आते ही 'साधु' संज्ञा होती है। सतरह प्रकार का संयम पालन होता है। इसे 'सर्वविरति गुणस्थान' भी कहते हैं।

17 प्रथम बार प्राप्ति के समय सातवें गुणस्थान की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है। बाद में जघन्य स्थिति एक समय भी हो सकती है। इसमें केवल संज्वलन कषाय और नो–कषाय का मन्द उदय रह जाता है। धर्म ध्यान की मुख्यता है।

18 मज्जविसयकसायनिद्दाविकहा।

शुक्ल ध्यान प्राप्ति, प्रतिसमय अनन्त गुणी विशुद्धि को लिये अपूर्व परिणाम होने से[19] स्थिति घात आदि पाँच अपूर्व कार्य होने से इस गुणस्थान को 'अपूर्वकरण' गुणस्थान भी कहते हैं। आठवें गुणस्थान में वर्तमान जीव चारित्र मोहनीय कर्म के उपशम या क्षपण के योग्य होने से उपशमक या क्षपक कहलाता है।

9. **अनिवृत्ति बादर गुणस्थान का लक्षण–** जिस गुणस्थान में सम–समयवर्ती त्रैकालिक जीवों के परिणामों में निवृत्ति (भिन्नता) नहीं होती तथा बादर संज्वलन कषाय का उदय रहता है, उसे अनिवृत्ति बादर गुणस्थान कहते हैं।

इस गुणस्थान में चारित्र मोहनीय कर्म का उपशमन करने वाले उपशमक तथा क्षय करने वाले क्षपक कहलाते हैं।

10. **सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान का लक्षण–** जिस गुणस्थान में मात्र संज्वलन लोभ कषाय का सूक्ष्म रूप से उदय (विपाकोदय) रहता है, उसे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान कहते हैं।

इस गुणस्थान में मात्र संज्वलन लोभ कषाय का उपशमन अथवा क्षय किया जाता है, क्योंकि इस गुणस्थान में संज्वलन लोभ के सिवाय अन्य चारित्र मोहनीय कर्म की ऐसी कोई प्रकृति ही नहीं है, जिसका उपशमन या क्षय न हुआ हो। संज्वलन लोभ का उपशमन करने वाले उपशमक तथा क्षय करने वाले क्षपक कहलाते हैं।

11. **उपशान्त मोहनीय गुणस्थान का लक्षण–** जिस गुणस्थान में मोहनीय कर्म की सभी प्रकृतियों का उपशम रहता है, उसे उपशान्त मोहनीय गुणस्थान कहते हैं। यदि क्षायिक समकिती हो तो दर्शन सप्तक का क्षय व मोहनीय कर्म की शेष प्रकृतियों का उपशम रहता है। इस गुणस्थान में उपशांत कषाय, यथाख्यात चारित्र व वीतरागदशा की प्राप्ति होती है। इस गुणस्थान को उपशम श्रेणि करने वाला ही प्राप्त करता है, जो पडिवाई होती है।

उपशम श्रेणि के आरम्भ का क्रम संक्षेप में इस प्रकार है– चौथे, पाँचवें, छठे और सातवें गुणस्थान में से किसी भी गुणस्थान में वर्तमान जीव, पहले चार अनंतानुबंधी कषायों का उपशम या विसंयोजना करता है और पीछे छठे या सातवें गुणस्थान में दर्शन मोहनीय त्रिक का उपशम करके उपशम समकित प्राप्त करता है अथवा पूर्व इसी भव में चौथे, पाँचवें, छठे या सातवें गुणस्थान में से किसी भी गुणस्थान में जीव दर्शन सप्तक का क्षय करके क्षायिक समकित प्राप्त करता है। इसके बाद वह जीव छठे तथा सातवें गुणस्थान में सैकड़ों बार आता और जाता है। फिर चारित्र मोहनीय की उपशमना के लिए तीन करण करता है।[20] सातवें गुणस्थान में यथाप्रवृत्तकरण करके अपूर्वकरण के साथ आठवें गुणस्थान को प्राप्त करता है। फिर अनिवृत्तिकरण के साथ नवमें गुणस्थान को प्राप्त करता है। दर्शन सप्तक की प्रकृतियों का क्षय या उपशम तो पूर्व में ही हो चुका है – इस गुणस्थान में संज्वलन लोभ को छोड़ 20 प्रकृतियों का उपशमन कर संज्वलन लोभ की सूक्ष्म किट्टी (कूट–कूट कर पतला करना) कर ली जाती है। [वे बीस प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं– 1–8 अप्रत्याख्यानी व

---

19 **पाँच अपूर्व कार्य निम्नोक्त हैं–** (1) **स्थिति घात–** बंधे हुए ज्ञानावरणीयादि कर्मों की बड़ी स्थिति को अपवर्तना करण से छोटी करना 'स्थिति घात' है। (2) **रसघात–** बंधे हुए ज्ञानावरणीयादि कर्मों के तीव्र अशुभ रस को अपवर्तनाकरण से मंद करना 'रस घात' है। (3) **गुण श्रेणि–** जिन कर्म दलिकों का स्थिति घात किया जाता है, उनको प्रथम अन्तर्मुहूर्त्त में असंख्यात गुणित क्रम से स्थापित कर देना 'गुणश्रेणि' कहलाती है। (4) **गुण संक्रमण–** पहले बांधी हुई अशुभ प्रकृतियों को वर्तमान में बंधने वाली शुभ प्रकृतियों के रूप में असंख्यात गुणित क्रम से परिवर्तित करना 'गुण संक्रमण' कहलाता है। (5) **अपूर्व स्थिति बंध–** पहले की अपेक्षा अत्यन्त अल्प स्थिति के कर्मों को बांधना 'अपूर्व स्थिति बंध' कहलाता है। (कर्मग्रन्थ भाग 2, गाथा 2 का विवेचन)

20 समकितादि प्राप्ति के पूर्व होने वाले यथाप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण से भिन्न है।

प्रत्याख्यानावरणीय चौक, 9–14 हास्यादिकषट्क (हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा) 15–17 तीनों वेद, 18–20 संज्वलन क्रोध, मान, माया] इस प्रक्रिया के पश्चात् जीव दसवें गुणस्थान में आता है।

पूर्व कही हुई सत्ताईस और एक संज्वलन लोभ – इन अट्ठाईस प्रकृतियों का उपशम (7 का क्षय या उपशम, शेष 21 का उपशम) करने से जीव को ग्यारहवाँ गुणस्थान प्राप्त होता है। ग्यारहवें गुणस्थान में काल करे तो अनुत्तर विमान में जाता है[21] व उत्कृष्ट 33 सागरोपम की ही स्थिति पाता है। ग्यारहवें गुणस्थान की स्थिति पूरी होने से ऊपर के गुणस्थान में नहीं जाकर नीचे गिर जाता है[22] व उपशम हुए संज्वलन लोभ का उदय हो जाता है। जैसे बुझा दिये जाने पर कोयले में वर्तमान में अग्नि नहीं होते हुए भी निमित्त प्राप्त करके पुनः जल उठता है या जैसे कोठरी में कोठरी और उस कोठरी में भी फिर कोठरी होने से आगे का रास्ता बन्द हो जाता है, वहाँ से उसे वापस लौटना ही पड़ता है। इसी प्रकार ग्यारहवें गुणस्थान से वापस लौटना पड़ता है। लौटकर जीव दसवें गुणस्थान में, नौवें गुणस्थान में यावत् कोई पहले गुणस्थान में भी आ सकता है[23] फिर कोई उसी भव में दूसरी बार भी उपशम श्रेणि कर सकता है। किन्तु क्षपक श्रेणि नहीं कर सकता।

12. **क्षीण मोहनीय गुणस्थान का लक्षण–** मोहनीय कर्म की सभी प्रकृतियों का क्षय होने से जिस गुणस्थान की प्राप्ति होती है, उसे क्षीण मोहनीय गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थानवर्ती जीव के मोहनीय कर्म का पूर्णतः क्षय हो जाने से क्षीण कषायी – यथाख्यात चारित्र एवं वीतराग दशा होती है तथा शेष घाती कर्मों के सद्भाव से छद्मस्थता रहती है। इस गुणस्थान को क्षपक श्रेणि करने वाला ही प्राप्त करता है। **क्षपक श्रेणि का क्रम संक्षेप में इस प्रकार है :–**

चौथे, पाँचवें, छट्ठे या सातवें गुणस्थान में से किसी भी गुणस्थान में इस भव में अथवा पूर्व भव में सबसे पहले अनन्तानुबन्धी व दर्शनमोहनीय त्रिक इन सात कर्म प्रकृतियों (दर्शन सप्तक) का क्षय करके क्षायिक समकित प्राप्त करता है। फिर चारित्र मोहनीय की क्षपणा के लिए तीन करण करता है। सातवें गुणस्थान में यथाप्रवृत्तकरण करके अपूर्वकरण के साथ आठवें गुणस्थान को प्राप्त करता है। फिर अनिवृत्तिकरण के साथ नवें गुणस्थान को प्राप्त करता है। ऊपर वर्णित 20 प्रकृतियों का क्रमशः क्षय नवें गुणस्थान में कर दसवें गुणस्थान में जाता है व संज्वलन लोभ का क्षय कर ग्यारहवें गुणस्थान को छोड़कर सीधा बारहवें गुणस्थान में आता है। बारहवें गुणस्थान के अन्तिम समय में[24] ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय इन तीन कर्मों का चरम वेदन करके तेरहवें गुणस्थान के प्रथम समय में उनकी निर्जरा करने के फलस्वरूप सर्वज्ञ सर्वदर्शी हो जाता है।

13. **सयोगी केवली गुणस्थान का लक्षण–** ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय इन तीन शेष घाती कर्मों का क्षय होने से जिस गुणस्थान में केवलज्ञान–केवलदर्शन प्राप्त हो और जो योग सहित हो, उसे सयोगी केवली गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान में दस बोल पाये जाते हैं[25] 1. क्षायिक समकित 2. शुक्ल ध्यान

---

21 श्रेणि में काल करने वाला जीव अनुत्तर विमान में ही जाता है।

22 उपशम श्रेणि करने वाला जीव चढ़ते या गिरते काल तो कर सकता है, पर श्रेणि चढ़ते 11वें गुणस्थान के पहले नहीं गिरता है।

23 जिस भव में उपशम श्रेणि होती है, उस भव में क्षपक श्रेणि नहीं करता – भगवती सूत्र शतक 9 उद्देशक 31. (कर्म ग्रन्थ की मान्यता के अनुसार उस भव में क्षपक श्रेणि भी सम्भव है)

24 क्षपक श्रेणि अपडिवाई होने से क्षपक श्रेणि से जीव गिरता ही नहीं है। अन्तर्मुहूर्त में ही केवली हो जाता है तथा उसी भव में मोक्ष प्राप्त करता है।

25 ये दस बोल चार घाती कर्मों के क्षय होने से ही प्राप्त होते हैं। पाँच प्रकार की लब्धि – अन्तराय कर्म के क्षय से, केवलज्ञान – ज्ञानावरणीय के क्षय से, केवलदर्शन– दर्शनावरणीय के क्षय से और शेष मोहनीय के क्षय से प्राप्त होते हैं।

3. यथाख्यात चारित्र 4. केवलज्ञान 5. केवल दर्शन 6. अनंतदान लब्धि 7. अनंतलाभ लब्धि 8. अनंतभोग लब्धि 9. अनंतउपभोग लब्धि 10. अनंतवीर्य लब्धि[26]।

तेरहवें गुणस्थान में जीव मन, वचन और काया के योगों का निरोध (रोक) करके चौदहवें गुणस्थान में जाता है।

14. **अयोगी केवली गुणस्थान का लक्षण–** जिस गुणस्थान में योग प्रवृत्ति का सम्पूर्ण निरोध हो जाने से अयोग अवस्था की प्राप्ति होती है, उसे अयोगी केवली गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान में पाँच लघु अक्षर[27] के मध्यम स्वर से उच्चारण जितनी स्थिति में रह कर 1. वेदनीय 2. आयुष्य 3. नाम और 4. गोत्र ये चार अघाती कर्मों का क्षय करके अफुसमाण (स्पर्श न करते हुए) गति से एक समय की अविग्रह (बिना मोड़ वाली) गति से औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर को छोड़ कर साकार उपयोग से सिद्ध गति को प्राप्त होता है। सिद्ध गति में जन्म नहीं, मरण नहीं, जरा नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दु:ख नहीं, दारिद्र नहीं, मोह नहीं, माया नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, चाकर नहीं, ठाकर नहीं, भूख नहीं, तृषा नहीं, ज्योति में ज्योति विराजमान है[28]। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अव्याबाध सुख (निराबाध), वीतरागता, अक्षय स्थिति, अमूर्तिक, अगुरु–लघु और अनन्त आत्म–सामर्थ्य सहित विराजमान होते हैं।

3. स्थिति द्वार

पहले गुणस्थान के तीन भंग हैं– 1. अनादि– अपर्यवसित[29] जिसकी आदि भी नहीं और अन्त भी नहीं, 2. अनादि सपर्यवसित[30]– जिसकी आदि नहीं, किन्तु अन्त है, 3. सादिसपर्यवसित[31]– जिसकी आदि भी है और अन्त भी है। तीसरे भंग की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्तन की है।

दूसरे गुणस्थान की स्थिति जघन्य एक समय[32] उत्कृष्ट छह आवलिका की है।

तीसरे और बारहवें गुणस्थान की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की है।

चौथे गुणस्थान की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तेतीस सागर[33] झाझेरी है।

पाँचवें और तेरहवें गुणस्थान की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व की है।

छठे, सातवें गुणस्थान की जघन्य स्थिति एक समय की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त[34] की है। (छठा, सातवाँ गुणस्थान झूले के समान आता जाता रहता है। इन दोनों गुणस्थानों की अलग–अलग स्थिति तो अन्तर्मुहूर्त ही है, परन्तु दोनों की मिलाकर उत्कृष्ट स्थिति देशोन करोड़ पूर्व की होती है।)[35]

---

26 उपर्युक्त दस बोलों में से पहला बोल चौथे से सातवें गुणस्थान में किसी भी गुणस्थान में, दूसरा बोल आठवें गुणस्थान में, तीसरा बोल बारहवें गुणस्थान में तथा शेष सात बोल तेरहवें गुणस्थान में प्राप्त होते हैं।

27 अ, इ, उ, ऋ, लृ।

28 लोक के अग्रभाग पर समश्रेणि में (सीध में) रहे हुए सिद्ध भगवन्तों के आत्म प्रदेशों द्वारा अवगाहित क्षेत्र में स्थित हो जाते हैं।

29 यह भंग अभव्य जीव की अपेक्षा से है, क्योंकि वे अनादिकाल से मिथ्यात्वी हैं और सदैव मिथ्यात्वी ही रहेंगे।

30 यह अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य जीव की अपेक्षा से है।

31 यह तीसरा भंग प्रतिपाति सम्यक्त्वी की अपेक्षा से हैं, जो सम्यक्त्व को प्राप्त करके फिर मिथ्यात्व में आया हो।

32 एक समय की जघन्य स्थिति दूसरे गुणस्थान को छोड़कर शेष सभी गुणस्थानों में काल करने (मरण) की अपेक्षा से समझनी चाहिए। दूसरे गुणस्थान की जघन्य स्थिति नीचे गिरने (मिथ्यात्व में आने) की अपेक्षा समझनी चाहिए।

33 पंच सग्रह भाग–2 गाथा–43 में चौथें गुणस्थान की स्थिति 33 सागरोपम झाझेरी बताई है, यही उचित प्रतीत होती है।

आठवें, नौवें, दसवें और ग्यारहवें गुणस्थान की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की है।

चौदहवें गुणस्थान की स्थिति मध्यम रीति से पाँच लघु अक्षर के उच्चारण करने में जितना काल लगे उतनी है।

4. क्रिया द्वार

पच्चीस क्रियाओं के नाम– 1. काइया 2. अहिगरणिया 3. पाउसिया 4. पारियावणिया 5. पाणाइवाइया 6. आरम्भिया 7. पारिग्गहिया 8. मायावत्तिया 9. अपच्चक्खाण किरिया 10. मिच्छादंसणवत्तिया 11. दिट्ठिया 12. पुट्ठिया 13. पाडुच्चिया 14. सामंतोवणिया 15. नेसत्थिया 16. साहत्थिया 17. आणवणिया 18. वेदारणिया 19. अणाभोगवत्तिया 20. अणवकंखवत्तिया 21. पओइया 22. सामुदाणिया 23. पेज्जवत्तिया 24. दोसवत्तिया और 25. ईरियावहिया।

पहले, दूसरे और तीसरे गुणस्थान में ईरियावहिया के सिवाय चौबीस[36] क्रियाएँ पाई जाती हैं। चौथे में मिथ्यात्व को भी छोड़कर तेईस क्रियाएँ पाई जाती हैं। पाँचवें में अविरति को छोड़कर बाईस क्रियाएँ हैं। छठे गुणस्थान में[37] पारिग्गहिया को छोड़कर 21 क्रियाएँ पायी जाती हैं। सातवें से नवमें गुणस्थान तक काइया, अहिगरणिया, पाउसिया, पारियावणिया, पाणाइवाइया और आरम्भिया ये छह क्रियाएँ भी छोड़कर शेष 15 क्रियाएँ पाई जाती हैं। दशवें गुणस्थान में (दोसवत्तिया) द्वेषवत्तिया[38] छोड़कर शेष 14 क्रियाएँ पाई जाती हैं। ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें में एक ईरियावहिया क्रिया पाई जाती है। चौदहवें गुणस्थान में एक भी क्रिया नहीं है।

<u>ज्ञातव्य –</u>

क्रिया द्वार में मिथ्यात्व मोहनीय का बन्ध कराने वाले अनन्तानुबन्धी कषाय को भी उपचार से (कार्य में कारण का समावेश करना) मिथ्यात्व मोहनीय मान लिया गया। अतः हेतु और कारण से भी क्रिया द्वार में और अधिक विशदता के साथ पहले, दूसरे, तीसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व की क्रिया मानी गई है।

5. सत्ता द्वार[39]

पहले गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक आठों ही कर्मों की सत्ता है। बारहवें गुणस्थान में सात[40] कर्मों की सत्ता है और तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थान में चार अघाती कर्मों की सत्ता रहती है।

---

34 पंचसंग्रह भाग–2 गाथा–44 में प्रमत्त, अप्रमत्त दोनों गुणस्थान की उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की बतलायी है।

35 अभिधान राजेन्द्र कोष, पंचसंग्रह।

36 भगवती सूत्र शतक 30वें (समवसरण) में विकलेन्द्रियों में सास्वादन गुणस्थान होते हुए भी क्रियावादी समवसरण नहीं माना है, दूसरे गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय होने से, मिथ्यात्वाभिमुख होने से एवं हीयमान परिणाम होने से सास्वादन समकित होने पर भी मिथ्यात्व की क्रिया लगना प्रज्ञापना सूत्र पद 17 के पहले उद्देशक के सूत्र 1139–40 में बताया है। इसी प्रकार पद 22 में भी विकलेन्द्रियों में नियम से मिथ्यात्व की क्रिया बतलाई है। अतः इन पाठों से ऐसा प्रतीत होता है कि दूसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व की क्रिया लगना ही अधिक संभव लगता है। तीसरे गुणस्थान में मिश्र परिणाम होते हैं। अतः इसमें जो मिथ्यात्व का अंश है, उसकी अपेक्षा से मिथ्यात्व की क्रिया बतलाई है।

37 कायिकी क्रिया में अनुपरत कायिकी चौथे गुणस्थान तक और दुष्प्रयुक्त कायिकी क्रिया छठे गुणस्थान तक लगती है। इसके बाद कायिकी क्रिया नहीं लगती।

38 दशवें गुणस्थान में क्रोध और मान का लेशमात्र भी उदय नहीं होने के कारण द्वेषवत्तिया क्रिया नहीं लेना उपयुक्त है।

39 आत्मा के साथ कर्मों का लगा रहना 'सत्ता' है।

40 क्योंकि बारहवें गुणस्थान में मोहनीय–कर्म का अभाव हो जाता है।

6. बन्ध द्वार[41]

तीसरे गुणस्थान को छोड़ कर पहले से सातवें गुणस्थान तक सात तथा आठ कर्मों का बन्ध होता है (जब सात कर्मों का बन्ध होता है तब आयु–कर्म नहीं बँधता) तीसरे, आठवें और नौवें गुणस्थान में आयु–कर्म के सिवाय सात कर्मों का बन्ध होता है। दसवें गुणस्थान में मोहनीय और आयु के सिवाय छह कर्मों का बन्ध होता है। ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थान में एक वेदनीय कर्म (साता वेदनीय) का ही बन्ध होता है। चौदहवें गुणस्थान में बन्ध नहीं होता।

7. उदय द्वार[42]

पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक आठों कर्मों का उदय होता है। ग्यारहवें तथा बारहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म के सिवाय सात कर्मों का उदय होता है। तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थान में चार अघाती कर्मों का उदय होता है।

8. उदीरणा द्वार[43]

पहले से लेकर छठे गुणस्थान तक सात–आठ–छह[44] कर्मों की उदीरणा होती है (सात की उदीरणा हो, तो आयु कर्म की नहीं होती तथा छह की उदीरणा हो तो आयु व वेदनीय दोनों को छोड़ना) सातवें, आठवें और नौवें गुणस्थान में छह कर्मों की उदीरणा (आयु और वेदनीय छोड़ कर) दसवें गुणस्थान में छह या पाँच कर्मों की उदीरणा (छह की हो तो पूर्वोक्त दो छोड़ना और पाँच की हो तो मोहनीय भी छोड़ देना) ग्यारहवें गुणस्थान में पाँच कर्मों की उदीरणा, बारहवें गुणस्थान में पूर्वोक्त पाँच कर्मों की या नाम और गोत्र इन दो कर्मों की उदीरणा होती हैं। तेरहवें गुणस्थान में पूर्वोक्त दो की उदीरणा होती है।[45] चौदहवें गुणस्थान में उदीरणा नहीं होती।

9. निर्जरा द्वार[46]

पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक आठों कर्मों की निर्जरा होती है। ग्यारहवें तथा बारहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म के सिवाय सात कर्मों की निर्जरा होती है और तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थान में चार अघाती कर्मों की निर्जरा होती है।

---

41 आत्मा के साथ कर्मों का क्षीर–नीर के समान एकमेक हो जाना।

42 उदय समय (काल) को प्राप्त कर्म परमाणुओं के अनुभव करने को 'उदय' कहते हैं।

43 उदयावलिका के बाहर स्थित कर्म परमाणुओं को कषाय सहित या कषाय रहित योग संज्ञा वाले वीर्य विशेष के द्वारा उदयावलिका में लाकर उनका उदयप्राप्त कर्म परमाणुओं के साथ अनुभव करना 'उदीरणा' कहलाता है।

44 भगवती सूत्र शतक 11 उद्देशक 1, शतक 25, उद्देशक 6 एवं शतक 35 से 40 तक से स्पष्ट होता है कि प्रमादी जीवों में 6 कर्मों की उदीरणा भी होती है। पुलाक पुलाकपने में काल नहीं करता, लेकिन आयु की अनुदीरणा बताई है। अप्रमत्त अवस्था आने से पूर्व भी आयुष्य व वेदनीय की उदीरणा रुकना उपर्युक्त पाठों से स्पष्ट हो जाने से तीसरे गुणस्थान में भी इनकी अनुदीरणा मानने में बाधा नहीं लगती है।

दसवें गुणस्थान में क्षपक श्रेणि वाले के जब मोहनीय की स्थिति एक आवलिका मात्र शेष रहे तब पाँच कर्मों की उदीरणा होती है। उपशम श्रेणि वालों के तो दसवें गुणस्थान के अन्तिम समय तक छह कर्मों की उदीरणा होती रहती है। इसी प्रकार बारहवें गुणस्थान में ज्ञाना॰, दर्श॰ और अन्तराय इन तीन कर्मों की स्थिति जब एक आवलिका मात्र शेष रहती है तब इन तीनों कर्मों की उदीरणा नहीं होती, नाम व गोत्र इन दो कर्मों की ही उदीरणा होती है।

45 कर्मग्रन्थ भाग–6, सप्ततिका प्रकरण–टीका पृष्ठ 243 में सयोगी केवली गुणस्थान के पूरे काल में नाम व गोत्र, इन दो कर्मों की उदीरणा बतलायी हैं।

46 कर्मों का आंशिक रूप से आत्मा से पृथक् हो जाना 'निर्जरा' है।

10. भाव द्वार

भाव पाँच होते हैं – 1. औदयिक[47] भाव 2. औपशमिक[48] भाव 3. क्षायिक[49] भाव 4. क्षायोपशमिक[50] भाव और 5. पारिणामिक[51] भाव।

पहले, दूसरे और तीसरे गुणस्थान में – औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक – ये तीन भाव होते हैं। चौथे से ग्यारहवें गुणस्थान तक उपशम श्रेणि वाले में पाँचों भाव होते हैं।[52] चौथे से बारहवें गुणस्थान तक क्षपक–श्रेणि वाले में औपशमिक छोड़कर शेष चारों भाव पाये जाते हैं। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में औदयिक, क्षायिक और पारिणामिक भाव– ये तीन भाव होते हैं तथा सिद्धों में क्षायिक और पारिणामिक– ये दो भाव होते हैं।

11. कारण द्वार

बन्ध के कारण पाँच होते हैं – मिथ्यात्व 2. अविरति 3. प्रमाद 4. कषाय और 5. योग।

पहले और तीसरे गुणस्थान में पाँचों ही कारण होते हैं। दूसरे और चौथे गुणस्थान में मिथ्यात्व के सिवाय चार कारण होते हैं। पाँचवे और छठे गुणस्थान में मिथ्यात्व तथा अविरति के सिवाय तीन कारण होते हैं। सातवें से दसवें गुणस्थान तक कषाय और योग– ये दो कारण होते हैं। ग्यारहवें, बारहवें तथा तेरहवें गुणस्थान में मात्र योग ही कारण होता है। चौदहवें गुणस्थान में कोई कारण नहीं हैं, वहाँ कर्म का बन्ध ही नहीं होता।

ज्ञातव्य –

कारण द्वार में दर्शन मोहनीय के सर्वघाती अंशवाली मिथ्यात्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय को भी मिथ्यात्व के नाम से बतला करके हेतु द्वार के संकुचित अर्थ को कुछ विस्तार (शुद्ध के साथ कुछ अशुद्ध) प्रदान किया गया है। इसमें मुख्यता अज्ञान की रही हैं, क्योंकि पहले व तीसरे गुणस्थान में सम्यग्ज्ञान नहीं हो सकता।

अत:कारण द्वार में पहले व तीसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व का कारण माना गया है।

12. परीषह द्वार

बाईस परीषहों के नाम – 1. क्षुधा 2. तृषा 3. शीत 4. उष्ण 5. दंशमशक 6. अचेल 7. अरति 8. स्त्री 9. चर्या 10. निषद्या (बैठना) 11. शय्या 12. आक्रोश 13. वध 14. याचना 15. अलाभ 16. रोग 17. तृणस्पर्श 18. जल (मैल) 19. सत्कार–पुरस्कार 20. प्रज्ञा 21. अज्ञान और 22. दर्शन परीषह।

चार कर्मों के उदय से बाईस परीषह होते हैं – ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से प्रज्ञा और अज्ञान– ये दो परीषह होते हैं। वेदनीय कर्म के उदय से ग्यारह (क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और जल–मैल) परीषह होते हैं। मोहनीय कर्म के उदय से आठ परीषह होते हैं। (दर्शन–मोहनीय के उदय

---

47 कर्मों के उदय से होने वाला भाव, जैसे – क्रोध आदि।

48 कर्मों के उपशम से होने वाला भाव, जैसे – उपशम समकित, उपशम चारित्र।

49 कर्मों के क्षय से होने वाला भाव, जैसे – केवलज्ञान।

50 कर्मों के क्षयोपशम से होने वाला भाव, जैसे – मतिज्ञान आदि।

51 स्वभाव से ही रहने वाला भाव, जैसे जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व।

52 जब क्षायिक समकित हो तथा उपशम श्रेणि करे तो पाँचों भाव होते हैं।

से एक 'दर्शनपरीषह' होता है और चारित्र–मोहनीय के उदय से सात– अचेल, अरति, स्त्री, निषद्या (बैठना), आक्रोश, याचना और सत्कार–पुरस्कार परीषह होते हैं) अन्तराय कर्म के उदय से एक अलाभ परीषह होता है।

पहले से तीसरे गुणस्थान तक मार्गस्थ नहीं होने के कारण परीषह नहीं माने जाते हैं। चौथे गुणस्थान में अविरति परिणाम होने के कारण दर्शन परीषह के सिवाय शेष परीषह संभव नहीं हैं[53]। पांचवें गुणस्थान में श्रमण भूत प्रतिमा आदि की अपेक्षा से बाईसों परीषह हो सकते हैं। छठे व सातवें गुणस्थान में 22 परीषह होते हैं। जिनमें से एक समय में एक जीव अधिक से अधिक 20 परीषह वेदता है, दो नहीं वेदता। क्योंकि शीत परीषह हो तो उष्ण नहीं होता और उष्ण हो तो शीत नहीं होता तथा चर्या परीषह हो तो निषद्या नहीं होता और निषद्या हो तो चर्या नहीं होता। आठवें गुणस्थान में दर्शन परीषह को छोड़कर 21 परीषह[54] होते हैं जिनमें से एक समय में एक जीव अधिक से अधिक 19 परीषह वेदता है (शीत, उष्ण में से एक तथा चर्या, निषद्या में से एक) नौवें गुणस्थान में अचेल, अरति व निषद्या[55] को छोड़कर शेष 18 परीषह होते हैं, जिनमें से एक समय में एक जीव अधिक से अधिक 16 परीषह वेदता है (शीत, उष्ण में से एक तथा चर्या, शय्या में से एक) दसवें, ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म के आठ परीषह छोड़कर शेष चौदह परीषह होते हैं। उनमें से एक समय में एक जीव अधिक से अधिक 12 परीषह वेदता है, दो नहीं वेदता। क्योकि शीत हो तो उष्ण नहीं, उष्ण हो तो शीत नहीं, चर्या हो तो शय्या नहीं, शय्या हो तो चर्या नहीं। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में वेदनीय कर्म से होने वाले ग्यारह परीषह उत्पन्ना होते हैं, जिनमें से एक साथ अधिक से अधिक नौ परीषह वेदते हैं, पूर्वोक्त रीति से दो नहीं होते।

नोटः– किन्हीं आचार्यों के मत से नौवें गुणस्थान तक बाईस परीषह माने जाते हैं किन्तु कर्म प्रकृतियों का उदय देखते हुए सातवें गुणस्थान तक बाईस परीषह होते हैं। आठवें गुणस्थान में दर्शन परीषह को छोड़ कर इक्कीस परीषह होते हैं। नौवें गुणस्थान में हास्यादिक षट्क का उदय नहीं होने से अचेल, अरति और निषद्या परीषह को छोड़ कर शेष 18 परीषह होते हैं।

ज्ञातव्य –

तत्त्वार्थ सूत्र में एक समय में अधिकतम 19 परीषह वेदन का कथन है, जबकि भगवती सूत्र एक समय में 20 परीषह वेदन का उल्लेख करता है। आगमिक प्रमाण की प्राथमिकता से हमें भी थोकड़े में एक समय में 20 परीषह वेदन करने का तथ्य इस रूप में समझना चाहिए–अनिवृत्ति बादर गुणस्थान के पूर्व तक अर्थात् आठवें गुणस्थान तक चलते हुए भी शय्या की विपरीतता की पीड़ा अनुभूति में रह सकती है तथा विहारादि के पश्चात् एक स्थान पर बैठने पर शय्या की प्रतिकूलता के साथ चर्या के कारण हुई वेदना की अनुभूति भी रह सकती है, पर शय्या की विपरीतता में उस स्थान पर भय मोहनीय कर्म के कारण से होने वाला निषद्या परीषह नहीं रह सकता। यदि भय मोहनीय के उदय में एकाग्रता से बैठे हुए डर लग रहा है और उस समय थकान आदि की पीड़ा भी महसूस हो रही हो तो चर्या और निषद्या परीषह साथ में रह सकते हैं, किन्तु शय्या परीषह उस समय नहीं रह सकता।

---

53 तत्त्वार्थ सूत्र के नवमें अध्याय के आठवें सूत्र में बताया है –

"मार्गाऽच्यवन निर्जरार्थं परिसोढव्याः परीषहाः ॥8॥

अर्थात् मार्ग से च्युत नहीं होने और कर्मों की निर्जरा के लिए जो सहन करने योग्य हैं, वे परीषह हैं। इसलिये पहले तीन गुणस्थानों में परीषह नहीं मान कर दुःख कहना व चौथे गुणस्थान में अविरति सम्यग्–दृष्टि होने के कारण मात्र दर्शन परीषह मानना उचित लगता है।

54 क्षयोपशम समकित नहीं होने से दर्शन परीषह छोड़ा गया है।

55 भयमोहनीय का उदय आठवें गुणस्थान तक होने से अचेल, अरति व निषद्या परीषह आठवें गुणस्थान तक माना गया है, क्योंकि इन तीनों का भय मोहनीय से अधिक सम्बन्ध है।

13. आत्मा द्वार

आठ आत्माओं के नाम – 1. द्रव्य आत्मा 2. कषाय आत्मा 3. योग आत्मा 4. उपयोग आत्मा 5. ज्ञान आत्मा 6. दर्शन आत्मा 7. चारित्र आत्मा और 8. वीर्य आत्मा।

पहले और तीसरे गुणस्थान में ज्ञान और चारित्र आत्मा के सिवाय छह आत्माएँ पाई जाती हैं। दूसरे, चौथे और पाँचवें गुणस्थान में चारित्र आत्मा के सिवाय सात आत्माएँ होती हैं। छठे गुणस्थान से लेकर दसवें गुणस्थान तक आठ आत्मा और ग्यारहवें से तेरहवें तक कषाय आत्मा के सिवाय सात आत्माएँ होती हैं। चौदहवें गुणस्थान में कषाय आत्मा और योग आत्मा के सिवाय छह आत्माएँ होती हैं। सिद्ध भगवान में ज्ञान, दर्शन, द्रव्य और उपयोग– ये चार आत्माएँ होती हैं।

14. जीव भेद द्वार

पहले गुणस्थान में जीव के चौदह ही भेद पाये जाते हैं। दूसरे गुणस्थान में जीव के छह भेद पाये जाते हैं– बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय और असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, इन का अपर्याप्त, संज्ञी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त और अपर्याप्त। तीसरे गुणस्थान में जीव का एक ही भेद पाया जाता है– संज्ञी का पर्याप्त। चौथे गुणस्थान में संज्ञी का पर्याप्त और अपर्याप्त, ये दो भेद पाये जाते हैं। पाँचवें से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक जीव का एक ही भेद– संज्ञी का पर्याप्त पाया जाता है।

15. गुणस्थान द्वार

प्रत्येक गुणस्थान अपने–अपने गुण से संयुक्त होता है। पहले गुणस्थान से चौथे गुणस्थान तक आठ बोल पाये जाते हैं– 1. असंयत 2. अप्रत्याख्यानी 3. अविरत 4. असंवृत 5. अपण्डित 6. अजागृत 7. अधर्मी 8. अधर्मव्यवसायी। पाँचवें गुणस्थान में आठ बोल पाये जाते हैं – 1. संयतासंयत 2. प्रत्याख्याना–प्रत्याख्यानी 3. व्रताव्रती 4. संवृतासंवृत 5. बालपण्डित 6. सुप्त–जागृत 7. धर्माधर्मी 8. धर्माधर्मव्यवसायी। छठे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक आठ बोल पाये जाते हैं– 1. संयती 2. प्रत्याख्यानी 3. विरत 4. संवृत 5. पण्डित 6. जागृत 7. धर्मी 8. धर्मव्यवसायी।

दूसरी तरह से गुणस्थान द्वार–

गत्यन्तर (बाटा बहती अवस्था) जाते मार्ग में गुणस्थान तीन– 1,2,4

अमर गुणस्थान तीन – 3,12,13

अप्रतिपाति गुणस्थान तीन – 12,13,14

तीर्थंकर नामगोत्र के बन्धक गुणस्थान पाँच – 4,5,6,7,8

तीर्थंकर के लिए अस्पृश्य गुणस्थान पाँच – 1,2,3,5,11

शाश्वत गुणस्थान छह – 1,4,5,6,7[56],13

---

56 पंचसंग्रह भाग–2 गाथा–25 में सातवें गुणस्थान को भी शाश्वत माना गया है, जैसा कि कहा है –

"मिच्छा अविरयदेसा, पमत्त अपमत्तया सजोगी य।

सव्वद्धं इयरगुणा, नाणाजीवेसु न होंती॥"

अनाहारक[57] गुणस्थान पाँच – 1,2,4,13,14

मोक्ष प्राप्त करने वाला जीव उस भव में कम से कम आठ गुणस्थान अवश्य प्राप्त करता है – 4,7,8,9,10,12, 13,14 और इस संसार अवस्थान काल में कम से कम प्रथम गुणस्थान सहित नौ गुणस्थान प्राप्त करता है।

16. योग द्वार[58]

पहले, दूसरे और चौथे गुणस्थान में 13 योग– (1. आहारक 2. आहारक मिश्र, इन दो को छोड़कर) पाये जाते हैं।

तीसरे गुणस्थान में 10 योग (1. औदारिक–मिश्र 2. वैक्रिय–मिश्र 3. आहारक 4. आहारक मिश्र और 5. कार्मण, इन पाँचों को छोड़कर) पाये जाते हैं। पाँचवें गुणस्थान में 12 योग (1. आहारक 2. आहारक मिश्र और 3. कार्मण को छोड़कर) पाये जाते हैं। छठे गुणस्थान में कार्मण के सिवाय चौदह योग पाये जाते हैं। सातवें से बारहवें गुणस्थान तक चार मनोयोग, चार वचनयोग और एक औदारिक, इस प्रकार नौ[59] योग पाये जाते हैं। तेंरहवें गुणस्थान में पाँच या सात योग होते हैं – पाँच होवें तो 1. सत्य मनोयोग 2. व्यवहार मनोयोग 3. सत्य वचन योग 4. व्यवहार वचन योग तथा 5. औदारिक– ये पाँच होते हैं। यदि सात हो, तो पाँच पूर्वोक्त और औदारिक मिश्र तथा कार्मण, इस प्रकार सात होते हैं। चौदहवें गुणस्थान में योग नहीं होता।

17. उपयोग द्वार

पहले और तीसरे गुणस्थान में छह उपयोग हो सकते हैं – तीन अज्ञान–मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंग ज्ञान और तीन दर्शन–चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन। दूसरे, चौथे और पाँचवें गुणस्थान में छह उपयोग होते हैं – 3 ज्ञान, 3 दर्शन। छठे से बारहवें तक सात उपयोग होते हैं – पूर्वोक्त छह और एक मनःपर्याय ज्ञान, लेकिन 10 वें गुणस्थान में 4 ज्ञान के ही उपयोग होते हैं[60]। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में केवलज्ञान और केवलदर्शन– ये दो ही उपयोग होते हैं।

अर्थात् 1,4,5,6,7,13–ये छह गुणस्थान नाना जीव की अपेक्षा सर्वदा पाये जाते हैं। पंच संग्रह भाग 1 गाथा 53 की टीका में सातवें गुणस्थान को शाश्वत बताया है। 'उत्तरपयडीयबन्धो' ग्रन्थ के काल द्वार की 942वीं गाथा की टीका में मनःपर्यवज्ञान में आहारक द्विक का बन्ध शाश्वत बताया है। आहारक द्विक का बन्ध 7वें गुणस्थान से लेकर 8वें गुणस्थान के छठे भाग तक होता है। लेकिन श्रेणि शाश्वत नहीं होने से 8वाँ गुणस्थान शाश्वत नहीं है। अतः सातवाँ गुणस्थान शाश्वत मानना उचित लगता है।

57 औदारिक आदि के पुद्‌गलों को ग्रहण नहीं करने वाले को 'अनाहारक' कहते हैं। पहला, दूसरा और चौथा गुणस्थान विग्रह गति की अपेक्षा से अनाहारक हैं और तेरहवाँ केवली–समुद्घात के तीसरे, चौथे और पाँचवें समयों की अपेक्षा अनाहारक है। चौदहवें गुणस्थान में तो आहार–पुद्‌गलों का ग्रहण होता ही नहीं, अतः वह अनाहारक है।

58 मन वचन और काया के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में होने वाली चंचलता को 'योग' कहते हैं। इसके पन्द्रह भेद हैं।

59 (अ) प्रज्ञापना 21वाँ शरीर पद– आहारक शरीर केवल ऋद्धिप्राप्त प्रमादी को ही होता है, अप्रमादी को नहीं। (ब) दूसरे आदि कर्मग्रंथ में आहारक शरीर– अंगोपांग का उदय केवल छठे गुणस्थान में माना है, सातवें में नहीं। (स) भगवती शतक–8, उद्देशक–9 में जहाँ सर्वबंध और देशबंध– अर्थात् प्रारम्भ व पश्चात्वर्ती पूरे काल की चर्चा है, अन्तर्मुहूर्त प्रमाण वाले देशबंध का स्वामी भी प्रमत्त संयत को ही बताया गया है। अप्रमत्त का निषेध किया गया है। (द) भगवती शतक 13 उद्देशक 9 में वैक्रिय लब्धि का प्रयोग कर यदि आलोचना किये बिना काल हो जाए, तो विराधक माना है। (य) टीकाग्रंथों में स्पष्ट उल्लेख है कि लब्ध्युपजीविता प्रमाद है। (र) समवायांग सूत्र के जीव–अजीव राशि के वर्णन में आहारक शरीर प्रमत्त को ही होना बताया है। इन सब कारणों से सातवें गुणस्थान में आहारक व वैक्रिय काययोग नहीं मानकर 9 योग मानना ही उचित लगता है।

60 भगवती सूत्र शतक 25 उद्देशक 7 में दसवें गुणस्थान में 4 ज्ञान के ही उपयोग बताये हैं, लेकिन क्षयोपशम की दृष्टि से 3 अनाकार उपयोग भी होते हैं। अतः क्षयोपशम की दृष्टि से 7 एवं प्रवृत्ति की दृष्टि से 4 उपयोग मानना उचित प्रतीत होता है।

18. लेश्या द्वार

पहले गुणस्थान से छठे गुणस्थान तक छह लेश्याएँ पाई जाती हैं। सातवें गुणस्थान में तेजो, पद्म और शुक्ल– ये तीन लेश्याएँ होती हैं। आठवें से बारहवें तक एक शुक्ल लेश्या ही होती है। तेरहवें गुणस्थान में एक परम शुक्ल लेश्या होती है। चौदहवें गुणस्थान में लेश्या नहीं होती।

19. हेतु द्वार

हेतु सत्तावन होते हैं – 5 मिथ्यात्व, 25 कषाय, 15 योग और 12 अव्रत (6 काय 5 इन्द्रिय 1 मन)।[61]

पहले गुणस्थान में आहारक और आहारक मिश्र को छोड़कर शेष पचपन हेतु पाये जाते हैं। दूसरे गुणस्थान में पाँच मिथ्यात्व को छोड़कर पचास हेतु पाये जाते हैं। तीसरे गुणस्थान में पूर्वोक्त पचास में से चार अनन्तानुबन्धी, औदारिक–मिश्र, वैक्रिय मिश्र और कार्मण– इन सातों के सिवाय तियालीस हेतु पाये जाते हैं। चौथे गुणस्थान में पूर्वोक्त तियालीस के साथ औदारिक मिश्र, वैक्रिय मिश्र और कार्मण– ये तीन मिलाने से छियालीस हेतु पाये जाते हैं। पाँचवें गुणस्थान में, छियालीस में से अप्रत्याख्यानी कषाय की चौकड़ी, त्रस की अविरति और कार्मण– ये छह घटा कर चालीस हेतु पाये जाते हैं। छठे गुणस्थान में सत्ताइस हेतु पाये जाते हैं – 14 योग और 13 कषाय[62]। सातवें, आठवें गुणस्थान में, औदारिक मिश्र, वैक्रिय, वैक्रिय मिश्र, आहारक और आहारक मिश्र इन पाँच को छोड़ कर बाईस हेतु पाये जाते हैं। नौवें गुणस्थान में हास्य आदि छह के सिवाय 16 हेतु पाये जाते हैं। दसवें गुणस्थान में नौ योग और संज्वलन का लोभ, ये दस हेतु पाये जाते हैं। ग्यारहवें तथा बारहवें गुणस्थान में, चार मन के, चार वचन के और एक औदारिक–ये नौ हेतु पाये जाते हैं। तेरहवें गुणस्थान में पाँच तथा सात हेतु पाये जाते हैं– 1. सत्य मनोयोग, 2.व्यवहार मनोयोग, 3. सत्य भाषा, 4. व्यवहार भाषा, 5. औदारिक, 6 औदारिक–मिश्र और 7 कार्मण (अगर 5 हेतु पावेंगे तो औदारिक मिश्र व कार्मण छोड़ना)। चौदहवें गुणस्थान में कोई भी हेतु नहीं होता[63]।

<u>ज्ञातव्य –</u>

हेतु द्वार में मिथ्यात्व को मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से होने वाले आत्म–परिणाम के संकुचित (शुद्ध) अर्थ में लिया गया है। वहाँ मिथ्यात्व के पाँच भेद ग्रहण किये गये और उनका सम्बन्ध मिथ्यात्व मोहनीय के विपाक उदय से होने के कारण मिथ्यात्व का हेतु केवल पहले गुणस्थान तक ही माना गया है।

20. मार्गणा द्वार[64]

- पहले गुणस्थान में आगति मार्गणा पांच (2,3,4,5,6) गति मार्गणा चार (3,4,5,7)
- दूसरे गुणस्थान की आगति मार्गणा तीन (4,5,6) गति मार्गणा दो (1,4)
- तीसरे गुणस्थान की आगति मार्गणा चार (1,4,5,6) गति मार्गणा एक (4)
- चौथे गुणस्थान की आगति मार्गणा नौ (1,3,5,6,7,8,9,10,11) गति मार्गणा पाँच (1,2,3,5,7)
- पाँचवें गुणस्थान की आगति मार्गणा चार (1,3,4,6) गति मार्गणा पाँच (1,2,3,4,7)

---

61 छह काय की यतना न करना और पाँच इन्द्रिय तथा मन को वश में न रखना।

62 संज्वलन की चौकड़ी और नव नो कषाय।

63 हेतु द्वार को संक्षेप में स्मृति में रखने के लिये निम्न पद्धति सरल लगती है– 55,50,43,46,40,27,22,22,16,10,9,9,5 या 7, तथा कोई हेतु नहीं।

64 यहाँ मार्गणा का तात्पर्य सीधा आने व जाने के मार्ग से है। जैसे– पहले गुणस्थान में आगति मार्गणा पाँच यानी पहले गुणस्थान में जीव सीधा पाँच गुणस्थानों (2,3,4,5,6) से आ सकता है और गति मार्गणा 4 यानी पहले गुणस्थान का जीव यदि पडिवाई है तो वह सीधा चार गुणस्थानों (3,4,5,7) में जा सकता है। इस द्वार में 1,2 आदि संख्या दी है, ये गुणस्थानों के क्रम संख्या की अपेक्षा है।

- छठे गुणस्थान की आगति मार्गणा एक (7) गति मार्गणा छह (1,2,3,4,5,7)
- सातवें गुणस्थान की आगति मार्गणा छह (1,3,4,5,6,8) गति मार्गणा तीन (6,8, काल करे तो 4)
- आठवें गुणस्थान में आगति मार्गणा दो (7,9) गति मार्गणा तीन (7,9, काल करे तो 4)
- नवें गुणस्थान में आगति मार्गणा दो (8,10) गति मार्गणा तीन (8,10, काल करे तो 4)
- दसवें गुणस्थान की आगति मार्गणा दो (9,11) गति मार्गणा चार (9,11,12, काल करे तो 4)
- ग्यारहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक (10) गति मार्गणा दो (10, काल करे तो 4)
- बारहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक (10) गति मार्गणा एक (13)
- तेरहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक (12) गति मार्गणा एक (14)
- चौदहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक (13) गति मार्गणा एक– मोक्ष।[65]
- **तीसरे गुणस्थान की गति मार्गणा से सम्बन्धित ज्ञातव्य–**
  (i) कर्म प्रकृति भाग–2 गाथा–72, (ii) पंचसंग्रह भाग 8 गाथा–72, (iii) रम्यरेणुजी कृत पंच संग्रह भाग–1 पेज–92, (iv) जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष भाग 2 पृष्ट–247 में उल्लेखित प्रमाणों के आधार पर तीसरे गुणस्थान की गति मार्गणा में पहला तथा चौथा गुणस्थान ही लिया है। तीसरे गुणस्थान में मिश्र अवस्था होने से एक साथ समकित व श्रावकपना अथवा साधुपना प्राप्त करने योग्य विशुद्धि नहीं बन पाती है, इसलिए गति मार्गणा में पहला तथा चौथा ये दो ही गुणस्थान लेना अधिक संगत प्रतीत होता है।

21. ध्यान द्वार[66]

पहले, दूसरे और तीसरे गुणस्थान में आर्त्तध्यान तथा रौद्रध्यान पाये जाते हैं। चौथे और पाँचवें में आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान और धर्मध्यान पाये जाते हैं। छठे में आर्त्तध्यान और धर्मध्यान होता है। सातवें में केवल धर्मध्यान ही है। आठवें से चौदहवें तक शुक्लध्यान पाया जााता है।

22. दण्डक द्वार

पहले गुणस्थान में चौबीस दण्डक, दूसरे में चौबीस में से पाँच स्थावर के छोड़कर उन्नीस, तीसरे और चौथे में (उन्नीस में से तीन विकलेन्द्रिय के छोड़कर) सोलह, पाँचवें में संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य – ये दो, छठे से चौदहवें गुणस्थान तक मनुष्य का एक दण्डक पाया जाता है।

23. जीवयोनि द्वार

पहले गुणस्थान में चौरासी लाख[67] जीवयोनि। दूसरे गुणस्थान में (एकेन्द्रिय की 52 लाख छोड़कर) बत्तीस लाख। तीसरे, चौथे गुणस्थान में (तीन विकलेन्द्रिय की छह लाख घटाकर) छब्बीस लाख, पाँचवें गुणस्थान में

---

65 उपशम श्रेणि वाला 8 वे गुणस्थान से चढ़ते हुये 11 वें के पहले नहीं गिरता है, काल कर सकता है। क्षपक श्रेणि वाला तो गिरता ही नहीं है, वह तो अंतर्मुहूर्त में केवली हो ही जाता है।

66 ध्यान सन्नी जीवों के पर्याप्त में ही होता है। छद्मस्थ जीवों में चित्त की एकाग्रता को 'ध्यान' कहते हैं तथा केवली भगवन्तों के योग–निरोध की अपेक्षा तथा चौदहवें गुणस्थान में अयोगीपन की अपेक्षा से ध्यान कहा है। असन्नी जीवों में ध्यान सम्भव नहीं है।

67 चौरासी लाख जीवयोनि इस प्रकार हैं– 7 लाख पृथ्वीकाय, 7 लाख अप्काय, 7 लाख तेउकाय, 7 लाख वायुकाय, 10 लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, 14 लाख साधारण वनस्पतिकाय, 2 लाख द्वीन्द्रिय, 2 लाख त्रीन्द्रिय, 2 लाख चतुरिन्द्रिय, 4 लाख देवता, 4 लाख नारकी, 4 लाख तिर्यंच पंचेन्द्रिय और 14 लाख मनुष्य।

(चौदह लाख मनुष्यों की और चार लाख तिर्यंचों की – इस प्रकार) अठारह लाख, छठे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक मनुष्य की चौदह लाख जीवयोनियाँ पाई जाती हैं।

24. निमित्त द्वार

पहले से चौथे तक चार गुणस्थान, दर्शनमोहनीय के निमित्त से होते हैं। पाँचवें से बारहवें तक आठ गुणस्थान चारित्र मोहनीय के निमित्त से होते हैं। तेरहवाँ योगों के सद्भाव के निमित्त से तथा चौदहवाँ गुणस्थान योगों के अभाव के निमित्त से होता है।

25. चारित्र द्वार

पहले से चौथे गुणस्थान तक चारित्र नहीं होता, पाँचवें गुणस्थान में देश चारित्र, छठे और सातवें गुणस्थान में तीन चारित्र होते हैं – 1. सामायिक[68] 2. छेदोपस्थापनीय[69] और 3. परिहार विशुद्धि[70]। आठवें, नौवें गुणस्थान में दो चारित्र होते हैं – 1. सामायिक 2. छेदोपस्थापनीय। दसवें गुणस्थान में एक सूक्ष्मसम्पराय[71] चारित्र होता है। ग्यारहवें से चौदहवें गुणस्थान तक यथाख्यात[72] चारित्र होता है।

26. आकर्ष द्वार[73]

पहले गुणस्थान का तीसरा भंग (सादि सपर्यवसित), तीसरा, चौथा और पाँचवाँ गुणस्थान एक भव की अपेक्षा जघन्य एक बार, उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार बार प्राप्त हो सकता है। अनेक भवों की अपेक्षा जघन्य दो बार, उत्कृष्ट असंख्यात बार प्राप्त हो सकता है। दूसरा गुणस्थान एक भव की अपेक्षा जघन्य एक बार, उत्कृष्ट दो बार और अनेक भवों की अपेक्षा जघन्य दो बार, उत्कृष्ट पाँच बार प्राप्त हो सकता है। छठा और सातवाँ गुणस्थान[74] मिलाकर एक भव की अपेक्षा जघन्य एक बार, उत्कृष्ट पृथक्त्व 100 बार, अनेक भवों की अपेक्षा जघन्य दो बार, उत्कृष्ट पृथक्त्व 1000 बार। आठवाँ, नववाँ, दसवाँ गुणस्थान एक भव में जघन्य 1 बार, उत्कृष्ट 4 बार, अनेक भवों की अपेक्षा जघन्य दो बार, उत्कृष्ट नौ बार। ग्यारहवाँ गुणस्थान एक भव में जघन्य 1 बार, उत्कृष्ट 2 बार, अनेक भवों में जघन्य दो, उत्कृष्ट चार बार। बारहवाँ, तेरहवाँ, चौदहवाँ गुणस्थान एक भव में एवं एक बार ही प्राप्त होता है।

---

68 जिस चारित्र में समता–भाव की प्राप्ति हो, उसे 'सामायिक चारित्र' कहते हैं।

69 पहले ग्रहण किये हुए संयम को छेद कर फिर संयम में आना– अर्थात् पहले जितने दिन संयम पालन किया हो, उसे न गिन कर दूसरी बार संयम लेने के समय से दीक्षाकाल गिनना और बड़े छोटे का व्यवहार करना, इसे 'छेदोपस्थापनीय चारित्र' कहते हैं।

70 जिसमें परिहार–विशुद्ध नाम की तपस्या की जाती है, उसे परिहार–विशुद्धि चारित्र कहते हैं। इस चारित्र की आराधना छेदोपस्थापनीय चारित्र वाले ही कर सकते हैं।

71 जिस चारित्र में कषाय का सूक्ष्म उदय रहता है, उसे 'सूक्ष्मसंपराय चारित्र' कहते हैं। इसमें सूक्ष्म (संज्वलन) लोभ का ही उदय होता है।

72 जिस चारित्र में लेश मात्र भी कषाय नहीं रहती, उसे 'यथाख्यात चारित्र' कहते हैं।

73 जीव एक भव की अपेक्षा और अनेक भवों की अपेक्षा प्रत्येक गुणस्थान को जघन्य और उत्कृष्ट कितनी बार फरस सकता है, उस फरसने की संख्या विशेष को आकर्ष कहते हैं।

74 वैसे तो छठे सातवें गुणस्थान में जीव एक भव में करोड़ों बार आ जा सकता है, लेकिन इन दोनों गुणस्थानों को छोड़कर वापिस इन्हीं गुणस्थानों में जीव पृथक्त्व 100 बार से ज्यादा नहीं आ सकता है।

27. समकित द्वार

क्षायिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक होता है। उपशम सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है। क्षायोपशमिक (वेदक) सम्यक्त्व चौथे से सातवें गुणस्थान तक होता है। सास्वादन सम्यक्त्व दूसरे गुणस्थान में होता है। मिथ्यात्व और मिश्र गुणस्थान में सम्यक्त्व नहीं है।

28. अन्तर द्वार

पहले गुणस्थान के तीसरे भंग का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट छासठ सागर झाझेरा है। दूसरे से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान (चौथे गुणस्थान को छोड़कर) तक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन (कुछ कम) अर्द्ध पुद्गल परावर्तन है, किन्तु चौथे गुणस्थान का जघन्य अन्तर एक समय है[75]। बारहवें, तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान का अन्तर नहीं है।[76]

29. अल्प बहुत्व द्वार

ग्यारहवें गुणस्थान वाले जीव सब से थोड़े हैं और वे प्रतिपद्यमान की अपेक्षा 54 ही पाये जाते हैं[77]। ग्यारहवें गुणस्थान की अपेक्षा बारहवें और चौदहवें गुणस्थान वाले संख्यात गुणा अधिक हैं। क्षपक–श्रेणि वाले प्रतिपद्यमान एक सौ आठ और पूर्वप्रतिपन्न पृथक्त्व सौ पाये जाते हैं। इनसे आठवें, नौवें और दसवें गुणस्थान वाले परस्पर तुल्य एवं बारहवें गुणस्थान वालों की अपेक्षा विशेषाधिक होते हैं। इन तीनों गुणस्थानों के मिलाकर संख्यात गुणा हैं। किन्तु दोनों श्रेणियों में मिलाकर भी पृथक्त्व[78] सौ ही हैं। उनकी अपेक्षा तेरहवें गुणस्थान वाले संख्यात गुणा हैं और ये एक समय में पृथक्त्व करोड़ पाये जाते हैं। उनकी अपेक्षा सातवें गुणस्थान वाले संख्यात गुणा हैं और ये एक समय में पृथक्त्व हजार करोड़[79] पाये जाते हैं। उनकी अपेक्षा छठे गुणस्थान वाले संख्यात गुणा हैं और ये भी एक समय में पृथक्त्व हजार करोड़ पाये जाते हैं। उनकी अपेक्षा पाँचवें गुणस्थान वाले असंख्यात गुणा हैं[80]। इनकी

75 भगवती सूत्र शतक–12, उद्देशक–9, में धर्मदेव का संचिट्ठण काल जघन्य एक समय का ही माना गया है। जीवाभिगम सूत्र में असंयति का जघन्य अन्तर एक समय बताया गया है। इस अपेक्षा से चौथे गुणस्थान का जघन्य अन्तर एक समय मानना उपयुक्त लगता है।

76 किसी गुणस्थान को एक बार छोड़ कर दूसरी बार फिर उसी गुणस्थान में आने तक जितना काल बीच में व्यतीत होता है, उसे 'अन्तर' कहते हैं। मिथ्यात्व गुणस्थान के पहले दो भंगों में अन्तर नहीं होता। क्योंकि वे उस गुणस्थान से छूटते ही नहीं हैं। दूसरे गुणस्थान से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान (चौथे गुणस्थान को छोड़कर) के जीव, अपने गुणस्थान से च्युत होकर कम से कम अन्तर्मुहूर्त में और अधिक से अधिक कुछ कम अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल में उन उन गुणस्थानों में आते हैं, इसी कारण इनमें इतने समय का अन्तर बतलाया गया है। बारहवें, तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान वाले जीव इन गुणस्थानों से नीचे गिरते ही नहीं हैं। एक बार चढ़कर सिद्ध हो जाते हैं। अतएव इनका कुछ भी अन्तर नहीं हैं। यह अन्तर एक जीव की अपेक्षा है।

बहुत जीवों की अपेक्षा अन्तर इस प्रकार है– उपशम श्रेणि के (आठवाँ, नवमाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ) गुणस्थानों का अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष का, क्षपकश्रेणि के (आठवाँ, नवमाँ, दसवाँ, बारहवाँ, चौदहवाँ) गुणस्थानों का अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट छह माह का, दूसरे व तीसरे गुणस्थानों का अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट पल के असंख्यातवें भाग का होता है। शेष छह गुणस्थान शाश्वत होने से बहुत जीवों की अपेक्षा उनका अन्तर नहीं होता है। आठ अशाश्वत गुणस्थानों में दूसरा व तीसरा उत्कृष्ट असंख्याता उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तक तथा शेष छह गुणस्थान उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक निरन्तर मिल सकते हैं।

77 यह 54 की संख्या प्रतिपद्यमान (वर्त्तमान) एक समय में श्रेणि प्रारंभ करने वालों की अपेक्षा से है। पूर्वप्रतिपन्न हो, तो वे इनसे विशेष होंगे। यही बात 12 वें और 14 वें गुणस्थान के विषय में भी समझनी चाहिए।

78 पृथक्त्व का अर्थ प्रायः 2 से 9 तक माना जाता है।

79 छठे, सातवें गुणस्थान की अल्पबहुत्व कर्मग्रन्थ भाग 5 की गाथा 63 के विवेचन के आधार पर दी गई है। वहाँ सातवें गुणस्थान वालों की संख्या उत्कृष्ट दो हजार करोड़ बतायी है तथा छठे गुणस्थान वाले इनसे संख्यात गुणा होने से छह, सात हजार करोड़ हो सकते हैं।

80 क्योंकि असंख्यात गर्भज तिर्यंच भी इस पाँचवें गुणस्थान में हैं।

अपेक्षा दूसरे गुणस्थान वाले असंख्यात गुणा[81] हैं। दूसरे गुणस्थान वालों की अपेक्षा तीसरे गुणस्थान वाले जीव असंख्यातगुणा[82] हैं। तीसरे गुणस्थान वालों की अपेक्षा चौथे गुणस्थान वाले असंख्यात गुणा[83] हैं। चौथे गुणस्थान वालों से[84] पहले गुणस्थान वाले जीव अनन्तगुणा[85] हैं। उक्त अल्प बहुत्व उत्कृष्ट संख्या की अपेक्षा से है। जघन्य में संख्या कम भी हो सकती है।

॥ गुणस्थान स्वरूप समाप्त ॥

81 दूसरे गुणस्थान वाले पाँचवें गुणस्थान वालों से असंख्यात गुणा इस कारण हैं कि पाँचवाँ गुणस्थान केवल मनुष्य और तिर्यचों को होता है, किन्तु दूसरा गुणस्थान तो चारों गति के जीवों को हो सकता है। इसके सिवाय दूसरा गुणस्थान विकलेन्द्रियों को भी होता है, परन्तु पाँचवाँ नहीं हो सकता।

82 यद्यपि दूसरा और तीसरा गुणस्थान चारों गतियों में पाया जाता है, परन्तु दूसरे की अपेक्षा तीसरे की स्थिति संख्यात गुणी है, तथा दूसरा गुणस्थान तो मात्र उपशम समकित से गिरते हुए ही आ सकता है, किन्तु मिश्र गुणस्थान मिथ्यात्व से चढ़ते हुए अथवा त्रिपुंज सहित प्रथमोपशम से गिरते समय अथवा क्षयोपशम से गिरते हुए चौथे, पाँचवें, छठे किसी भी गुणस्थान से आ सकता है। इस कारण तीसरे गुणस्थान वाले जीव दूसरे से असंख्यात गुणा हैं।

83 तीसरे गुणस्थान की अपेक्षा चौथे की स्थिति बहुत अधिक है और वह भी चारों गति में पाया जाता है। अतः चौथे गुणस्थान वाले जीव, उनकी अपेक्षा अधिक है।

84 यहाँ एक बोल और भी कहते हैं– चौथे गुणस्थान से सिद्ध भगवंत अनन्त गुणा हैं। फिर सिद्धों से पहले गुणस्थान वाले अनन्त गुणा हैं।

85 सूक्ष्म व साधारण वनस्पतिकाय के जीव, सभी मिथ्यादृष्टि हैं, अतएव पहले गुणस्थान वाले, चौथे गुणस्थान वालों से तथा सिद्ध भगवन्तों से भी अनन्त गुणा हैं।

आठ द्रव्येन्द्रिय का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र 15वाँ पद)

आठ द्रव्येन्द्रियों के नाम – दो कान, दो आँख, दो नाक, एक जिह्वा (जीभ) और एक स्पर्शनेन्द्रिय।

नैरयिक, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य के आठ द्रव्येन्द्रियाँ होती हैं। पाँच स्थावर के एक द्रव्येन्द्रिय-स्पर्शनेन्द्रिय होती है। द्वीन्द्रिय के दो द्रव्येन्द्रियाँ होती हैं- जिह्वा और स्पर्शनेन्द्रिय। त्रीन्द्रिय के चार द्रव्येन्द्रियाँ होती हैं- दो नाक, जिह्वा और स्पर्शनेन्द्रिय। चतुरिन्द्रिय के ये चार और दो आँख, ये छह द्रव्येन्द्रियाँ होती हैं। इस थोकड़े में, एक जीव की अपेक्षा, अनेक जीवों की अपेक्षा, एक जीव में परस्पर, अनेक जीवों में परस्पर अतीत (भूतकाल) वर्तमान (बद्धेल्लगा) और भविष्य (पुरेक्खड़ा) काल की द्रव्येन्द्रियों का वर्णन किया गया है।

एक जीव की अपेक्षा

एक नैरयिक ने अतीत काल में द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त की हैं। वर्तमानकाल सम्बन्धी द्रव्येन्द्रियाँ उसके आठ हैं और भविष्य में आठ अथवा सोलह अथवा सत्रह यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे।

एक असुर कुमार देवता ने अतीत काल में द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त की, वर्तमान काल में आठ हैं और भविष्य में आठ, नौ अथवा दस यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे। असुरकुमार की तरह शेष नवनिकाय के भवनपति देव कहना। पृथ्वी, पानी और वनस्पति के एक-एक जीव ने अतीत काल में द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त कीं, वर्तमान में एक द्रव्येन्द्रिय है और भविष्य में आठ अथवा नौ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे।

तेजस्काय, वायुकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य के एक-एक जीव ने अतीतकाल में द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त कीं, वर्तमान में तेजस्काय, वायुकाय के एक, द्वीन्द्रिय के दो, त्रीन्द्रिय के चार, चतुरिन्द्रिय के छह, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य के आठ द्रव्येन्द्रियाँ हैं तथा भविष्य में नौ, दस अथवा ग्यारह यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे।

संज्ञी तिर्यंच के एक-एक जीव ने द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान काल में आठ हैं और भविष्य में आठ अथवा नौ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे।

संज्ञी मनुष्य के एक-एक जीव ने द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान काल में आठ हैं और भविष्य में कोई करेंगे, कोई नहीं करेंगे। जो करेंगे तो आठ अथवा नौ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे।

वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और पहले, दूसरे देवलोक के एक-एक देवता ने द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान काल में आठ हैं और भविष्य में आठ अथवा नौ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे।

तीसरे देवलोक से नवग्रैवेयक तक के एक-एक देवता ने अतीत में द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त कीं, वर्तमान में आठ हैं और भविष्य में आठ अथवा सोलह अथवा सत्रह यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे।

चार अनुत्तर विमान के एक-एक देवता ने द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में आठ हैं और भविष्य में आठ अथवा सोलह अथवा चौबीस यावत् संख्यात करेंगे।

सर्वार्थ सिद्ध के एक-एक देवता ने द्रव्येन्द्रियाँ अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में आठ हैं और भविष्य में भी आठ ही करेंगे।

अनेक जीवों की अपेक्षा

नारकी के अनेक नैरयिकों ने अतीत में द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में अनन्त करेंगे। संज्ञी मनुष्य और अनुत्तर विमान के सिवाय बहुत भवनपति, पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, असंज्ञी मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी यावत् नवग्रैवेयक तक के देवों ने द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में अनन्त करेंगे।

चार अनुत्तर विमान के बहुत देवों ने द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में असंख्यात करेंगे। सर्वार्थसिद्ध के बहुत देवों ने द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में संख्यात हैं और भविष्य में संख्यात करेंगे। बहुत संज्ञी मनुष्यों ने द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त की, वर्तमान में संख्यात हैं और भविष्य में अनन्त करेंगे।

एक जीव में परस्पर की अपेक्षा

एक-एक नारकी के नैरयिक ने नैरयिक रूप से द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में आठ हैं और भविष्य में कोई करेंगे, कोई नहीं करेंगे। जो नरक से निकल कर बाद में वापस नरक में उत्पन्न नहीं होंगे, वे भविष्य काल सम्बन्धी द्रव्येन्द्रियाँ नहीं करेंगे। जो नरक से निकल कर बाद में वापस नैरयिक होंगे वे आठ अथवा सोलह अथवा चौबीस यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे।

एक-एक नारकी के नैरयिक ने संज्ञी मनुष्य और पाँच अनुत्तर विमान को छोड़कर शेष सभी स्थानों में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में कोई करेंगे, कोई नहीं करेंगे। जो करेंगे वे एकेन्द्रिय में 1,2,3, द्वीन्द्रिय में 2,4,6, त्रीन्द्रिय में 4,8,12, चतुरिन्द्रिय में 6,12,18 और पंचेन्द्रिय में 8,16,24 यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे।

एक-एक नारकी के नैरयिक ने संज्ञी मनुष्य रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान काल में नहीं है और भविष्य काल में नियमपूर्वक 8 या 16 या 24 यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे।

एक-एक नारकी के नैरयिक ने पाँच अनुत्तर विमान रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में कोई करेंगे, कोई नहीं करेंगे। जो करेंगे वे चार अनुत्तर विमान रूप में आठ अथवा सोलह करेंगे और सर्वार्थसिद्ध रूप में आठ करेंगे। भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी देवता 'नारकी' की तरह कहना।

पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के एक-एक देव ने स्व-स्थान और पर-स्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में स्व-स्थान में आठ हैं और पर-स्थान की अपेक्षा नहीं हैं, भविष्य में कोई करेंगे, कोई नहीं करेंगे। जो करेंगे वे आठ अथवा सोलह अथवा चौबीस यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे।

पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के एक-एक देवता ने चार अनुत्तर विमान रूप से द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में किसी ने कीं, किसी ने नहीं कीं, जिसने कीं उसने आठ कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में कोई करेंगे, कोई नहीं करेंगे। जो करेंगे वे आठ अथवा सोलह करेंगे।

पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के एक-एक देवता ने सर्वार्थसिद्ध के देवरूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में नहीं की, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में कोई करेंगे, कोई नहीं करेंगे। जो करेंगे वे आठ करेंगे।

पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के एक-एक देव ने वैमानिक देव और संज्ञी मनुष्य के सिवा शेष सभी स्थानों में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में कोई करेंगे, कोई नहीं करेंगे। जो करेंगे वे एकेन्द्रिय में

1,2,3, द्वीन्द्रिय में 2,4,6, त्रीन्द्रिय में 4,8,12, चतुरिन्द्रिय में 6,12,18 और पंचेन्द्रिय में 8,16,24 यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे।

पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के एक-एक देवता ने संज्ञी मनुष्य रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में नियमपूर्वक 8,16,24 यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे।

चार अनुत्तर विमान के एक-एक देवता ने स्वस्थान सम्बन्धी द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में किसी ने कीं, किसी ने नहीं कीं। जिसने कीं उसने आठ कीं। वर्तमान में आठ द्रव्येन्द्रियाँ हैं और भविष्य में कोई करेंगे, कोई नहीं करेंगे। जो करेंगे वे आठ करेंगे।

चार अनुत्तर विमान के एक-एक देवता ने सर्वार्थसिद्ध के देवता के रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में नहीं की, वर्तमान में नहीं है, भविष्य में कोई करेंगे, कोई नहीं करेंगे। जो करेंगे वे आठ करेंगे।

चार अनुत्तर विमान के एक-एक देवता ने पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के देव रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में कोई करेंगे, कोई नहीं करेंगे। जो करेंगे वे 8 अथवा 16 अथवा 24 यावत् संख्यात करेंगे।

चार अनुत्तर विमान के एक-एक देवता ने संज्ञी मनुष्य रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में नियमपूर्वक 8,16,24 यावत् संख्यात करेंगे।

चार अनुत्तर विमान के एक-एक देवता ने संज्ञी मनुष्य और वैमानिक देवता के सिवाय सभी स्थानों में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नहीं करेंगे।

सर्वार्थसिद्ध के एक-एक देवता ने स्व-स्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में नहीं कीं, वर्तमान काल में आठ हैं और भविष्यकाल में नहीं करेंगे। सर्वार्थसिद्ध के एक-एक देवता ने चार अनुत्तर विमान रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में किसी ने कीं, किसी ने नहीं कीं, जिसने कीं उसने आठ कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में नहीं करेंगे।

सर्वार्थसिद्ध के एक-एक देवता ने चार अनुत्तर विमान और संज्ञी मनुष्य के सिवाय शेष सभी स्थानों में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नहीं करेंगे। सर्वार्थसिद्ध के एक-एक देवता ने संज्ञी मनुष्य के रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में नियमपूर्वक आठ करेंगे।

पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य, इन ग्यारह स्थानों के एक-एक जीव ने स्व-स्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में स्व-स्थान की अपेक्षा एकेन्द्रिय में एक, द्वीन्द्रिय में 2, त्रीन्द्रिय में 4, चतुरिन्द्रिय में 6, पंचेन्द्रिय में 8 द्रव्येन्द्रियाँ हैं, परस्थान की अपेक्षा नहीं है, भविष्य में स्व-स्थान की अपेक्षा कोई करेंगे, कोई नहीं करेंगे। जो करेंगे वे एकेन्द्रिय में 1,2,3, द्वीन्द्रिय में 2,4,6, त्रीन्द्रिय में 4,8,12, चतुरिन्द्रिय में 6,12,18 और पंचेन्द्रिय में 8,16,24 यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे।

उक्त ग्यारह बोलों के एक-एक जीव ने पाँच अनुत्तर विमान और संज्ञी मनुष्य के सिवा सभी स्थानों में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में कोई करेंगे, कोई नहीं करेंगे। जो करेंगे वे एकेन्द्रिय में 1,2,3, द्वीन्द्रिय में 2,4,6, त्रीन्द्रिय में 4,8,12, चतुरिन्द्रिय में 6,12,18 और पंचेन्द्रिय में 8,16,24 यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे।

उक्त ग्यारह बोलों के एक-एक जीव ने पाँच अनुत्तर विमान के देवता रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में कोई करेंगे, कोई नहीं करेंगे। जो करेंगे वे चार अनुत्तर विमान रूप में आठ अथवा सोलह करेंगे और सर्वार्थसिद्ध के देव रूप में आठ करेंगे। उक्त ग्यारह बोलों के एक-एक जीव ने संज्ञी मनुष्य के रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में नियमपूर्वक 8,16,24 यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे।

संज्ञी मनुष्य के एक-एक जीव ने स्व-स्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में आठ हैं और भविष्य में कोई करेंगे, कोई नहीं करेंगे। जो करेंगे वे 8 या 16 या 24 यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे।

एक-एक संज्ञी मनुष्य ने पाँच अनुत्तर विमान और संज्ञी मनुष्य के सिवा शेष सभी स्थानों की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में कोई करेंगे, कोई नहीं करेंगे। जो करेंगे वे एकेन्द्रिय की अपेक्षा 1,2,3, द्वीन्द्रिय की अपेक्षा 2,4,6, त्रीन्द्रिय की अपेक्षा 4,8,12, चतुरिन्द्रिय की अपेक्षा 6,12,18 और पंचेन्द्रिय की अपेक्षा 8,16,24 यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे।

एक-एक संज्ञी मनुष्य ने पाँच अनुत्तर विमान के देवता रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में किसी ने कीं, किसी ने नहीं कीं। जिसने कीं उसने चार अनुत्तर विमान के देव रूप में 8 अथवा 16 कीं और सर्वार्थसिद्ध देवता के रूप में 8 कीं। वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में कोई करेंगे, कोई नहीं करेंगे। जो करेंगे वे चार अनुत्तर विमान के देव रूप में 8 अथवा 16 करेंगे और सर्वार्थसिद्ध के देव रूप में आठ करेंगे।

अनेक जीवों में परस्पर की अपेक्षा

बहुत नारकी के नैरयिकों ने नारकी से लेकर यावत् नव-ग्रैवेयक देवता के रूप में तथा औदारिक के दस दण्डक रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में स्व-स्थान की अपेक्षा असंख्यात हैं, परस्थान की अपेक्षा नहीं हैं और भविष्य में अनन्त करेंगे। बहुत नारकी के नैरयिकों ने पाँच अनुत्तर विमान के देव रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में असंख्यात करेंगे।

बहुत से भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य के जीवों ने नारकी से लेकर यावत् नव ग्रैवेयक देवता और औदारिक के दस दण्डक के रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में स्व-स्थान की अपेक्षा असंख्यात हैं, परस्थान की अपेक्षा नहीं हैं, भविष्य में अनन्त करेंगे। बहुत से भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य के जीवों ने पाँच अनुत्तर विमान के देव रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में नहीं कीं, वर्तमान काल में नहीं हैं और भविष्य में असंख्यात करेंगे, किन्तु वनस्पति की अपेक्षा अनन्त करेंगे।

बहुत से संज्ञी मनुष्य के जीवों ने संज्ञी मनुष्य और पाँच अनुत्तर विमान के सिवाय शेष सभी स्थानों की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में अनन्त करेंगे। बहुत से संज्ञी मनुष्य के जीवों ने स्वस्थान यानी संज्ञी मनुष्य की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में संख्यात हैं और भविष्य में अनन्त करेंगे। बहुत से संज्ञी मनुष्य के जीवों ने पाँच अनुत्तर विमान के देव रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीतकाल में संख्यात कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में संख्यात करेंगे।

पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के बहुत देवों ने स्वस्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में अनन्त करेंगे। पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के बहुत देवों ने चार अनुत्तर विमान के देवता रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में असंख्यात कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में असंख्यात करेंगे।

पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के बहुत देवों ने सर्वार्थसिद्ध देवता के रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में असंख्यात करेंगे। पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के बहुत देवों ने पाँच अनुत्तर विमान के सिवाय शेष सभी स्थानों की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में स्वस्थान की अपेक्षा असंख्यात हैं, परस्थान की अपेक्षा नहीं है और भविष्य में अनन्त करेंगे।

चार अनुत्तर विमान के बहुत देवों ने स्वस्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में असंख्यात कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में असंख्यात करेंगे। चार अनुत्तर विमान के बहुत देवों ने सर्वार्थसिद्ध के देवता की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीतकाल में नहीं की, वर्तमान काल में नहीं है और भविष्य में संख्यात करेंगे।

चार अनुत्तर विमान के बहुत देवों ने पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के देवों की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में असंख्यात करेंगे। चार अनुत्तर विमान के बहुत देवों ने वैमानिक देव और संज्ञी मनुष्य के सिवाय शेष सभी स्थानों की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नहीं करेंगे। चार अनुत्तर विमान के बहुत देवों ने संज्ञी मनुष्य के रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान काल में नहीं है और भविष्य में असंख्यात करेंगे।

सर्वार्थसिद्ध के बहुत देवों ने स्वस्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में नहीं कीं, वर्तमान में संख्यात हैं और भविष्य में नहीं करेंगे। सर्वार्थसिद्ध के बहुत देवों ने चार अनुत्तर विमान के देवरूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में संख्यात कीं, वर्तमान काल में नहीं हैं और भविष्य में नहीं करेंगे।

सर्वार्थसिद्ध के बहुत देवों ने चार अनुत्तर विमान और संज्ञी मनुष्य के सिवाय शेष सभी स्थानों की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में नहीं करेंगे। सर्वार्थसिद्ध के बहुत देवों ने संज्ञी मनुष्य के रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में संख्यात करेंगे।

ज्ञातव्य :

1. पच्चीस बोल के चौथे बोल में इन्द्रियाँ पाँच बताई गई हैं, वे क्षयोपशम से होने वाली भावेन्द्रिय की अपेक्षा बताई गई हैं। नाम कर्म के उदय से द्रव्येन्द्रियों की प्राप्ति होती है। श्रवण रूपी भाव एक समान होने पर भी द्रव्य रूप से कान दो हैं, इसी प्रकार आँखें भी दो और नाक भी दो हैं। रसना और स्पर्शन इन्द्रिय भाव तथा द्रव्य दोनों की अपेक्षा एक-एक ही है। अतः भावेन्द्रियाँ पाँच होते हुए भी द्रव्येन्द्रियाँ आठ होती हैं।
   अतः एकेन्द्रिय में 1, द्वीन्द्रिय में 2, त्रीन्द्रिय में 4, चतुरिन्द्रिय में 6 तथा पंचेन्द्रिय में 8 द्रव्येन्द्रियाँ होती हैं।
2. औदारिक, वैक्रिय तथा आहारक इन तीन शरीर वाले जीवों के द्रव्येन्द्रियाँ होती हैं। मात्र तैजस, कार्मण शरीर हो अथवा अशरीरी हो तो उन जीवों के द्रव्येन्द्रियाँ नहीं होती हैं।
3. वनस्पति में सूक्ष्म व साधारण निगोद के जीव यद्यपि अनन्त होते हैं। किन्तु उन जीवों के औदारिक शरीर कुल असंख्यात ही होते हैं। इस कारण से वनस्पतिकाय के जीवों में द्रव्येन्द्रियाँ वर्तमान की अपेक्षा असंख्यात ही मानी जाती हैं।
4. भविष्यत्कालीन द्रव्येन्द्रियों की संख्या इस बात पर आधारित है कि वह जीव जल्दी से जल्दी कब मोक्ष में जा सकता है। जो जीव केवली की आगति (108) में सम्मिलित हैं वे 8 द्रव्येन्द्रियाँ करके अर्थात् मनुष्य भव पाकर मोक्ष में जा सकते हैं। इसमें भी यह ध्यान रखना चाहिए कि जो केवली की आगति से मनुष्य भव को प्राप्त किये हुए हैं वे उसी मनुष्य भव में मोक्ष जा सकते हैं।

जो केवली की आगति के अलावा अन्य स्थानों से मनुष्य भव में आये हुए हैं, वे मनुष्य उस भव में मोक्ष नहीं जा सकते।

5. कम से कम 9 द्रव्येन्द्रियाँ जहाँ भविष्यकाल की अपेक्षा कही हैं, उसे इस प्रकार समझना चाहिए - अगला भव बादर पृथ्वी, पानी, वनस्पति का कर ले तथा उसके बाद मनुष्य बनकर मोक्ष में चला जाये।
6. पाँच अनुत्तर विमान को छोड़कर अन्य सभी जीव के भेदों में अतीत (भूतकाल) और पुरेक्खडा (भविष्यत्काल) की अपेक्षा अनन्त द्रव्येन्द्रियाँ हो सकती हैं। अर्थात् जीव अनन्त बार उन स्थानों पर जन्म-मरण कर सकता है।
7. पाँच अनुत्तर विमान में से प्रथम चार अनुत्तर विमानों में जीव दो बार जा सकता है। सर्वार्थसिद्ध विमान में एक बार ही जा सकते हैं।
8. चार अनुत्तर विमान के दो भव करके अथवा सर्वार्थसिद्ध विमान का भव करके मनुष्य बने जीव का यह अन्तिम भव है, अतः उसके भविष्य में कोई द्रव्येन्द्रियाँ नहीं होगी।
9. तीन प्रकार के जीव आराधक कहलाते हैं- A. आयु कर्म का बन्ध नहीं करने वाले मनुष्य जो उसी भव में मोक्ष जायेंगे। B. अप्रमत्त अवस्था (7वें से 11वें गुणस्थान तक) में काल करने वाले साधु-साध्वी। C. चौथे से सातवें गुणस्थान में रहते हुए अगले भव का आयुष्य बन्ध करने वाले जीव।
10. पाँच अनुत्तर विमान में अप्रमत्त एवं आराधक साधु-साध्वी ही जा सकते हैं। इसलिए यह कहा जाता है कि आराधक साधु-साध्वी नरकादि दुर्गतियों में जन्म-मरण नहीं करते। सन्नी मनुष्य और वैमानिक देव, इन दो दण्डकों में ही अधिकतम 15 भव करते हैं।
11. एक बार चार अनुत्तर विमान में देव रूप में उत्पन्न होने वाले जीव भविष्य में अधिकतम 13 भव (6 वैमानिक देव के तथा 7 सन्नी मनुष्य के **अथवा** 5 वैमानिक देव के तथा 8 सन्नी मनुष्य के **अथवा** 4 वैमानिक देव के तथा 9 सन्नी मनुष्य के **अथवा** 3 वैमानिक देव के तथा 10 सन्नी मनुष्य के **अथवा** 2 वैमानिक देव के तथा 11 सन्नी मनुष्य के **अथवा** 1 वैमानिक देव का तथा 12 सन्नी मनुष्य के) कर सकते हैं। इसीलिए उनके भविष्यत्काल की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अधिकतम संख्यात अर्थात् 13x8=104 समझनी चाहिए।
12. पहला अलावा- 'एक जीव की अपेक्षा' एक जीव के सम्पूर्ण दण्डकों को मिलाकर है तथा तीसरा अलावा- 'एक जीव में परस्पर की अपेक्षा' एक-एक जीव का एक-एक दण्डक में चिन्तन है। पहले अलावे के अनुसार- चार अनुत्तर विमान के देवता भविष्य में 16 द्रव्येन्द्रियाँ करके मोक्ष में जा सकते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि अगले भव में मनुष्य बने, वापस मनुष्य बनकर मोक्ष में जायें तो 16 द्रव्येन्द्रियाँ घटित होती हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि एक बार आराधक बना हुआ बीच के भवों में विराधक भी बन सकता है। मिथ्यात्व दशा में आयु का बन्ध भी कर सकता है, किन्तु पन्द्रह भवों में से पहला व अन्तिम भव में नियमा आराधक होगा।

आत्मा का थोकड़ा

श्री भगवती सूत्र के 12 वें शतक के 10 वें उद्देशक में आत्मा का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं-

1. **नाम द्वार**- •आत्मा आठ- 1. द्रव्य आत्मा, 2. कषाय आत्मा, 3. योग आत्मा, 4. उपयोग आत्मा, 5. ज्ञान आत्मा, 6. दर्शन आत्मा, 7. चारित्र आत्मा, 8. वीर्य आत्मा।
2. **अर्थ द्वार**- 1. जो त्रिकालवर्ती आत्म द्रव्य है, उसको द्रव्यात्मा कहते हैं। यह आत्मा सब जीवों के होती है। 2. क्रोध, मान आदि कषाय युक्त आत्मा को कषाय आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सकषायी जीवों के होती है। उपशान्त कषाय और क्षीणकषाय जीवों के नहीं होती। 3. मन, वचन, काया के व्यापार वाले आत्मा को योग आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सयोगी जीवों के होती है। 4. साकार उपयोग और अनाकार (निराकार) उपयोग वाले आत्मा को उपयोग आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सिद्ध और संसारी सभी जीवों के होती है। 5. विशेष सम्यग्-ज्ञान युक्त आत्मा को ज्ञान आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सम्यग्दृष्टि जीवों के होती है। 6. सामान्य ज्ञान युक्त आत्मा को दर्शन आत्मा कहते हैं, यह आत्मा सब जीवों के होती है। 7. विरति (चारित्र) युक्त आत्मा को चारित्र आत्मा कहते हैं। यह आत्मा चारित्रवान् जीवों के होती है। 8. ♣ करण वीर्य युक्त आत्मा को वीर्य आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सब संसारी जीवों के होती है।
3. **परस्पर सम्बन्ध द्वार**- द्रव्य आत्मा में कषाय आत्मा की भजना♦, कषाय आत्मा में द्रव्य आत्मा की नियमा।♥ 2. द्रव्य आत्मा में योग आत्मा की भजना, योग आत्मा में द्रव्य आत्मा की नियमा। 3. द्रव्य आत्मा में उपयोग आत्मा की नियमा, उपयोग आत्मा में द्रव्य आत्मा की नियमा। 4. द्रव्य आत्मा में ज्ञान आत्मा की भजना, ज्ञान आत्मा में द्रव्य आत्मा की नियमा। 5. द्रव्य आत्मा में दर्शन आत्मा की नियमा, दर्शन आत्मा में द्रव्य आत्मा की नियमा। 6. द्रव्य आत्मा में चारित्र आत्मा की भजना, चारित्र आत्मा में द्रव्य आत्मा की नियमा। 7. द्रव्य आत्मा में वीर्य आत्मा की भजना, वीर्य आत्मा में द्रव्य आत्मा की नियमा।

कषाय आत्मा में योग आत्मा की नियमा, योग आत्मा में कषाय आत्मा की भजना। 2. कषाय आत्मा में उपयोग आत्मा की नियमा, उपयोग आत्मा में कषाय आत्मा की भजना। 3. कषाय आत्मा में ज्ञान आत्मा की भजना, ज्ञान आत्मा में कषाय आत्मा की भजना। 4. कषाय आत्मा में दर्शन आत्मा की नियमा, दर्शन आत्मा में कषाय आत्मा की भजना। 5. कषाय आत्मा में चारित्र आत्मा की भजना, चारित्र आत्मा में कषाय आत्मा की भजना। 6. कषाय आत्मा में वीर्य आत्मा की नियमा, वीर्य आत्मा में कषाय आत्मा की भजना।

योग आत्मा में उपयोग आत्मा की नियमा, उपयोग आत्मा में योग आत्मा की भजना। 2. योग आत्मा में ज्ञान आत्मा की भजना, ज्ञान आत्मा में योग आत्मा की भजना। 3. योग आत्मा में दर्शन आत्मा की नियमा, दर्शन आत्मा में योग आत्मा की भजना। 4. योग आत्मा में चारित्र आत्मा की भजना, चारित्र आत्मा में योग आत्मा की भजना। 5. योग आत्मा में वीर्य आत्मा की नियमा, वीर्य आत्मा में योग आत्मा की भजना।

उपयोग आत्मा में ज्ञान आत्मा की भजना, ज्ञान आत्मा में उपयोग आत्मा की नियमा। 2. उपयोग आत्मा में दर्शन आत्मा की नियमा, दर्शन आत्मा में उपयोग आत्मा की नियमा। 3. उपयोग आत्मा में चारित्र आत्मा की भजना, चारित्र आत्मा में उपयोग आत्मा की नियमा। 4. उपयोग आत्मा में वीर्य आत्मा की भजना, वीर्य आत्मा में उपयोग आत्मा की नियमा।

• उपयोग लक्षण आत्मा का सब जीवों में एक ही प्रकार का है, परन्तु कुछ विशेषताओं के कारण आत्मा के आठ भेद कहे गये हैं।

♣ वीर्य दो प्रकार को होता है- करण वीर्य और लब्धि वीर्य, वीर्यान्तराय कर्म के क्षय या क्षयोपशम वाले आत्मा को जो वीर्य की लब्धि होती है यानी उसमें शक्ति रूप से जो वीर्य रहता है उसे लब्धि वीर्य कहते हैं।

लब्धि वीर्य के कारण जो उत्थान बल पुरूषकार पराक्रम होता है, उसे करण वीर्य कहते हैं।

♦ भजना का अर्थ है विकल्प अर्थात् हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती।

♥ नियमा का अर्थ निश्चित अर्थात् निश्चित रूप से होती ही है।

ज्ञान आत्मा में दर्शन आत्मा की नियमा, दर्शन आत्मा में ज्ञान आत्मा की भजना। 2. ज्ञान आत्मा में चारित्र आत्मा की भजना, चारित्र आत्मा में ज्ञान आत्मा की नियमा। 3. ज्ञान आत्मा में वीर्य आत्मा की भजना, वीर्य आत्मा में ज्ञान आत्मा की भजना।

दर्शन आत्मा में चारित्र आत्मा की भजना, चारित्र आत्मा में दर्शन आत्मा की नियमा। 2. दर्शन आत्मा में वीर्य आत्मा की भजना, वीर्य आत्मा में दर्शन आत्मा की नियमा।

चारित्र आत्मा में वीर्य आत्मा की नियमा, वीर्य आत्मा में चारित्र आत्मा की भजना।

4. **अल्पबहुत्व द्वार–** 1. सबसे थोड़े चारित्र आत्मा वाले, 2. उससे ज्ञान आत्मा वाले अनन्त गुणा, 3. उससे कषाय आत्मा वाले अनन्त गुणा, 4. उससे योग आत्मा वाले विशेषाधिक, 5. उससे वीर्य आत्मा वाले विशेषाधिक, 6,7,8, उससे द्रव्य आत्मा वाले, उपयोग आत्मा वाले, दर्शन आत्मा वाले परस्पर तुल्य (बराबर), किन्तु वीर्य आत्मा वाले से विशेषाधिक हैं।

आत्मा के परस्पर सम्बन्ध द्वार को नियमा-भजना के रूप में इस प्रकार भी जाना जा सकता है–

क्र.	**आत्मा का नाम**	**गुणस्थान**	**नियमा**	**भजना**
1.	द्रव्य आत्मा	1-14, सिद्ध	2 (दर्शन, उपयोग)	5 (कषाय, योग, ज्ञान, चारित्र, वीर्य)
2.	कषाय आत्मा	1-10	5 (द्रव्य, योग, उपयोग, दर्शन, वीर्य)	2 (चारित्र, ज्ञान)
3.	योग आत्मा	1-13	4 (द्रव्य, उपयोग, दर्शन, वीर्य)	3 (कषाय, ज्ञान, चारित्र)
4.	उपयोग आत्मा	1-14, सिद्ध	2 (द्रव्य, दर्शन)	5 (कषाय, योग, ज्ञान, चारित्र, वीर्य)
5.	ज्ञान आत्मा	2, 4-14, सिद्ध	3 (द्रव्य, दर्शन, उपयोग)	4 (कषाय, चारित्र, योग, वीर्य)
6.	दर्शन आत्मा	1-14, सिद्ध	2 (द्रव्य, उपयोग)	5 (कषाय, योग, ज्ञान, चारित्र, वीर्य)
7.	चारित्र आत्मा	6-14	5 (द्रव्य, उपयोग, ज्ञान, दर्शन, वीर्य)	2 (कषाय, योग)
8.	वीर्य आत्मा	1-14	3 (द्रव्य, उपयोग, दर्शन)	4 (कषाय, योग, ज्ञान, चारित्र)

असंयत भव्य-द्रव्य-देवों का थोकड़ा

श्री भगवती सूत्र के शतक पहला, उद्देशक दूसरा में असंयत भव्य द्रव्य देव का वर्णन इस प्रकार है -

1. अहो भगवन् ! असंयत भव्य-द्रव्य-देव मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?
   हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट ऊपर के (नववें) ग्रैवेयक में उत्पन्न होते हैं।
2. अहो भगवन् ! अविराधक साधुजी मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?
   हे गौतम ! जघन्य पहले देवलोक में उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न होते हैं।
3. अहो भगवन् ! विराधक साधुजी मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?
   हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट पहले देवलोक में उत्पन्न होते हैं।
4. अहो भगवन् ! अविराधक श्रावक मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?
   हे गौतम ! जघन्य पहले देवलोक में, उत्कृष्ट बारहवें देवलोक में उत्पन्न होते हैं।
5. अहो भगवन् ! विराधक श्रावक मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?
   हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट ज्योतिषी में उत्पन्न होते हैं।
6. अहो भगवन् ! असन्नी (बिना मन वाले जीव अकाम निर्जरा करने वाले) तिर्यंच मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?
   हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट वाणव्यन्तर में उत्पन्न होते हैं।
7. अहो भगवन् ! कन्द मूल भक्षण करने वाले तापस मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?
   हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट ज्योतिषी में उत्पन्न होते हैं।
8. अहो भगवन् ! कान्दर्पिक (हंसी मजाक करने वाले) साधु मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?
   हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट पहले देवलोक में उत्पन्न होते हैं।
9. अहो भगवन् ! चरक, परिव्राजक, अम्बड़जी के मत के संन्यासी मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?
   हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट पांचवें देवलोक में उत्पन्न होते हैं।
10. अहो भगवन् ! किल्विषी भावना वाले तथा आचार्य-उपाध्याय आदि के अवर्णवाद बोलने वाले साधु मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?
    हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट छठे देवलोक में उत्पन्न होते हैं।
11. अहो भगवन् ! सन्नी तिर्यंच मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?
    हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट आठवें देवलोक में उत्पन्न होते हैं।
12. अहो भगवन् ! आजीविक (गोशालक) मत के मानने वाले साधु मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?
    हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट बारहवें देवलोक में उत्पन्न होते हैं।
13. अहो भगवन् ! आभियोगिक (मंत्र-जंत्रादि करने वाले) साधु मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?
    हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट बारहवें देवलोक में उत्पन्न होते हैं।
14. अहो भगवन् ! **स्व लिंगी दर्शन भ्रष्ट साधु** (साधु के लिंग को धारण करने वाले, समकित से भ्रष्ट निह्नव आदि) मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?
    हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट ऊपर के (नववें) ग्रैवेयक में उत्पन्न होते हैं।

ज्ञातव्य :

1. जो चारित्र के परिणाम से शून्य हो, वह असंयत कहलाता है। जो भविष्य में देव होने योग्य है, वह 'भव्य-द्रव्य-देव' कहलाता है। अर्थात् जो चारित्र पर्याय से रहित है और इस समय तक देव नहीं बना है, किन्तु आगे देव बनने वाला है, वह 'असंयत भव्य-द्रव्य' देव है।

2. जो व्यवहार में अथवा बाहरी रूप में साधु के गुणों को धारण करने वाला, साधु की सम्पूर्ण सामाचारी का पालन करने वाला, किन्तु जिसमें आन्तरिक साधुता न हो, केवल द्रव्य लिंग धारण करने वाला हो, ऐसा भव्य या अभव्य मिथ्यादृष्टि यहाँ असंयत भव्य-द्रव्य देव मानना चाहिए।
3. इस थोकड़े में असंयत भव्य-द्रव्य-देवों की गति का जो वर्णन किया है वह इस अपेक्षा से समझना कि यदि वे मरकर देव गति में जाये तो कहाँ जाकर उत्पन्न होते हैं। अर्थात् अविराधक (आराधक) साधु व अविराधक (आराधक) श्रावक को छोड़कर अन्य सभी चारों गतियों में जा सकते हैं, किन्तु यहाँ पर जो उल्लेख किया है, वह देवगति की अपेक्षा से ही समझना चाहिए। आराधक साधु व आराधक श्रावक तो मरकर वैमानिक देवलोक में ही जाते हैं। अन्य गतियों में नहीं जाते। आराधक साधु तो मोक्ष में भी जा सकते हैं। असंयत जीव चारों गति में जा सकता है, परन्तु अगले भव में देव बनने वाला ही, असंयत भव्य-द्रव्य-देव कहलाता है, अतः वह भी देवलोक में ही जायेगा।
4. यहाँ जिन विराधक संयमियों की उत्पत्ति उत्कृष्ट पहले देवलोक की बताई गई है, वह ऐसे साधु-साध्विओं की समझनी चाहिए जो कि मूल गुण व उत्तर गुण में दोष लगाने के बाद उनकी शुद्धि नहीं कर पाते, आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रायश्चित्त आदि द्वारा अपने आपको शुद्ध नहीं बना पाते।

जो साधु-साध्वी मूल गुण व उत्तर गुण दोनों की शुद्धि कर आराधक हो जाते हैं, वे तो पहले देवलोक से ऊपर के देवलोकों में भी उत्पन्न हो जाते हैं तथा पाँच पदवियों (इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, लोकपाल और अहमिन्द्र) में से कोई भी एक पदवी को प्राप्त कर लेते हैं।

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

कक्षा : पाँचवीं – जैनागम स्तोक वारिधि (परीक्षा 07 जनवरी, 2018)

समय : 3 घण्टे — अंक : 100

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों में से सही उत्तर का क्रमाक्षर कोष्ठक में लिखिए :- 10x1 = (10)

(a) वाणव्यंतर देवों का दण्डक है-
(क) 20वाँ (ख) 21वाँ
(ग) 22वाँ (घ) 23वाँ (ग)

(b) जीव के वर्तमान भव की पर्याय छोड़ने को कहते हैं-
(क) उपपात (ख) मरण
(ग) च्यवन (घ) गति-आगति (ग)

(c) समकित मोहनीय का उदय रहता है -
(क) क्षायिक समकित में (ख) क्षयोपशम समकित में
(ग) उपशम समकित में (घ) सास्वादन समकित में (ख)

(d) चल, मल व अगाढ़ दोष जिसमें लगते है, उसे कहते हैं-
(क) समकित मोहनीय (ख) मिथ्यात्व मोहनीय
(ग) मिश्र मोहनीय (घ) मोहनीय कर्म (क)

(e) आठ द्रव्येन्द्रिय के थोकड़े का वर्णन चलता है-
(क) पन्नवणा पद-13 (ख) पन्नवणा पद-14
(ग) पन्नवणा पद-15 (घ) पन्नवणा पद-16 (ग)

(f) एक बार चार अनुत्तर विमान में उत्पन्न जीव भविष्य में अधिकतम कितने भव करता है-
(क) 8 भव (ख) 13 भव
(ग) 15 भव (घ) 03 भव (ख)

(g) 8 आत्मा में 5वाँ भेद हैं-
(क) उपयोग (ख) ज्ञान
(ग) दर्शन (घ) चारित्र (ख)

(h) कषाय आत्मा में कितनी आत्मा की नियमा होती है-
(क) 2 (ख) 3
(ग) 4 (घ) 5 (घ)

(i) विराधक श्रावक काल करके उत्कृष्ट कहाँ तक जा सकता है-
(क) भवनपति (ख) ज्योतिषी
(ग) लोकान्तिक (घ) 2 देवलोक तक (ख)

(j) जो चारित्र के परिणाम से शून्य हो, वह कहलाता है-
(क) संयत (ख) संयतासंयत
(ग) असंयत (घ) मिथ्यादृष्टि (ग)

प्र.2 निम्न प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में दीजिए :- 10x1 = (10)

(a) आराधक साधु पदवी भी पा सकते हैं। (हाँ)

(b) हंसी मजाक नहीं करने वाले साधु को 'कान्दर्पिक कहाँ जाता है। (नहीं)

(c) नियमा का अर्थ विकल्प नहीं है। (हाँ)

(d) भगवती सूत्र शतक 12 उद्देशक 10 में 8 आत्मा का वर्णन चलता है। (हाँ)

(e) त्रीन्द्रिय के तीन द्रव्येन्द्रियाँ होती हैं। (नहीं)

(f) चार अनुत्तर के देवता भविष्य में असंख्यात द्रव्येन्द्रियाँ कर सकते हैं। (हाँ)

(g) उसी भव में मोक्ष प्राप्त करने वाला जीव छठें गुणस्थान में आता ही है। (नहीं)

(h) सत्कार-पुरस्कार 19वाँ परीषह है। (हाँ)

(i) चन्द्र और तारा विमानवासी देवों जघन्य स्थिति पाव पल्योपम नहीं होती है। (हाँ)

(j) नव लोकान्तिक की स्थिति जघन्य व उत्कृष्ट 8 पल्योपम होती है। (हाँ)

प्र.3 मुझे पहचानो :- 10x1 = (10)

(a) मैं काल करके सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न हो सकता हूँ। अविराधक साधु/आराधक साधु

(b) मुझमें चार आत्मा की नियमा होती है। योग आत्मा

(c) मेरी उत्कृष्ट स्थिति 3 अहोरात्रि की है। तेउकाय

(d) मेरे में पाँच शरीर हो सकते हैं। कर्मभूमिज मनुष्य/ गर्भज मनुष्य

(e) मैं वैक्रिय करूँ तो उत्कृष्ट 1 लाख योजन झाझेरी कर सकता हूँ। कर्मभूमिज मनुष्य/ गर्भज मनुष्य

(f) मेरे अनुसार सम्यक्त्व प्राप्ति पूर्व 5 लब्धियाँ करना आवश्यक है। लब्धिसार

(g) नालिकेर द्वीप के मनुष्य का दृष्टांत मुझमें मिलता है। पंचसग्रह/कर्मग्रन्थ

(h) मैं उपशम श्रेणि सहित ही होता हूँ। द्वितीयोपशम

(i) मैं एक ऐसा थोकड़ा हूँ, जिसमें इन्द्रियों का कथन क्षयोपशम से होने वाली भावेन्द्रिय की अपेक्षा से बतलाया है। 25 बोल

(j) जो मेरी आगति में आ जाता है, वह 8 द्रव्येन्द्रियाँ करके मोक्ष जाता है। केवली

प्र.4 एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए। **14x2=(28)**

(a) असंयत भव्य-द्रव्य देव किसे कहते हैं ?

उ. जो चारित्र के परिणाम से शून्य हो, वह असंयत कहलाता है। जो भविष्य में देव होने योग्य है, वह 'भव्य-द्रव्य-देव' कहलाता है। अर्थात् जो चारित्र पर्याय से रहित है और इस समय तक देव नहीं बना है, किन्तु आगे देव बनने वाला है, वह 'असंयत भव्य-द्रव्य' देव है।

(b) ज्ञान व चारित्र आत्मा में कौनसी आत्मा की नियमा होती है ?

उ. ज्ञान आत्मा में 3- द्रव्य, दर्शन, उपयोग की।

चारित्र आत्मा में 5- द्रव्य, उपयोग, ज्ञान, दर्शन, वीर्य।

(c) युगलिक मनुष्य वैक्रिय शरीर क्यों नहीं बना सकते, कारण सहित लिखिए।

उ. करोड़ पूर्व या इससे कम स्थिति वाले सन्नी पर्याप्त मनुष्य ही वैक्रिय शरीर बना सकते हैं। इससे ऊपर की स्थिति वाले नहीं। युगलिकों की स्थिति करोड़ पूर्व से अधिक ही होती है।

(d) सिद्ध भगवान की अवगाहना लिखिए।

उ. आत्मा-प्रदेशों की अवगाहना जघन्य एक हाथ आठ अंगुल, मध्यम चार हाथ सोलह अंगुल और उत्कृष्ट 333 धनुष-32 अंगुल।

(e) युगलिक मनुष्यों की अवगाहना लिखिए।

उ. हेमवत और ऐरण्यवत में एक गाउ। हरिवास और रम्यक्वास में दो गाउ। देवकुरु और उत्तरकुरु में तीन गाउ। अन्तर्द्वीप में आठ सौ धनुष। इनमें जघन्य देशऊणी और उत्कृष्ट परिपूर्ण होती है।

(f) तीन लब्धियों में प्रायोग्य लब्धि को स्पष्ट कीजिए।

उ. प्रायोग्य लब्धि- मनोयोग, वचनयोग और काययोग में से कोई भी एक योग में उपयोग हो, अन्तरंग कारणभूत अनुकम्पादि विशिष्ट गुण वाला हो।

(g) द्वितीयोपशम के भांगे लिखिए।

उ. सातों प्रकृतियों का उपशम- (4 से 11 गुणस्थान तक, स्थिति- जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त)

चार की विसंयोजना, तीन का उपशम- (4 से 11 गुणस्थान तक, स्थिति- जघन्य-उत्कृष्ट अर्न्तमूर्त्त)

(h) कौनसे गुणस्थान से सात बोलों का बंध नहीं होता ? सात बोल लिखिए।

उ. चतुर्थ गुणस्थान में सात बोलों का बंध नहीं होता।

सात बोल- 1. नारकी 2. तिर्यंच 3. भवनपति 4. वाणव्यन्तर 5. ज्योतिषी 6. स्त्रीवेद और 7. नपुंसकवेद।

(i) निर्जरा द्वार लिखिए।

उ. पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक आठों कर्मों की निर्जरा होती है। ग्यारहवें तथा बारहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म के सिवाय सात कर्मों की निर्जरा होती है। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में चार अघाती कर्मों की निर्जरा होती है।

(j) चौथे गुणस्थान की आगति व गति मार्गणा लिखिए।

उ. चौथे गुणस्थान की आगति मार्गणा नौ (1,3,5,6,7,8,9,10,11)

गति मार्गणा पाँच (1,2,3,5,7)

(k) कोई मिथ्या दृष्टि जीव सीधा साधु बन सकता है क्या? स्पष्ट कीजिए।

उ. यदि कोई पडिवाई मिथ्यादृष्टि है तो वह विशुद्धि के बल पर सीधा सातवें गुणस्थान में जा सकता है। गति मार्गणा से यह स्पष्ट है। अतः मिथ्या दृष्टि जीव सीधा साधु भी बन सकता है।

(l) नवग्रैवेयक के एक-एक देवता की वैमानिक व मनुष्य के सिवाय भविष्यत् काल की अपेक्षा से द्रव्येन्द्रियाँ लिखिए।

उ. भविष्य में कोई करेंगे, कोई नहीं करेंगे। जो करेंगे वे एकेन्द्रिय में 1,2,3, द्वीन्द्रिय में 2,4,6, त्रीन्द्रिय में 4,8,12, चतुरिन्द्रिय में 6,12,18 और पंचेन्द्रिय में 8,16,24 यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त करेंगे।

(m) वनस्पतिकाय में जीव अनन्त होते हुए भी वर्तमान में द्रव्येन्द्रियाँ असंख्यात क्यों बतायी ? स्पष्ट कीजिए।

उ. वनस्पतिकाय में सूक्ष्म व साधारण निगोद के जीव यद्यपि अनन्त होते हैं। किन्तु उन जीवों के औदारिक शरीर कुल असंख्यात ही होते हैं। इस कारण से वनस्पतिकाय के जीवों में द्रव्येन्द्रियाँ वर्तमान की अपेक्षा असंख्यात ही मानी जाती है।

(n) चार अनुत्तर विमान में गये जीव के भविष्यत् काल में अधिकतम भव व द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होती हैं ?

उ. अधिकतम 13 भव तथा 104 द्रव्येन्द्रियाँ होती हैं।

प्र.5 निम्न प्रश्नों के उत्तर तीन-चार वाक्यों में लिखिए : - 14x3 = (42)

(a) उत्कृष्ट पहला देवलोक साधु की गति किस अपेक्षा से बताई है, स्पष्ट कीजिए।

उ. जो मूल गुण व उत्तर गुण में दोष लगाने के बाद उनकी शुद्धि नहीं कर पाते, आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रायश्चित्त आदि द्वारा अपने आपको शुद्ध नहीं बना पाते।

(b) आत्मा-8 के थोकड़े का अल्पबहुत्व द्वार लिखिए।

उ. 1. सबसे थोड़े चारित्र आत्मा वाले, 2. उससे ज्ञान आत्मा वाले अनन्त गुणा,

3. उससे कषाय आत्मा वाले अनन्त गुणा, 4. उससे योग आत्मा वाले विशेषाधिक,

5. उससे वीर्य आत्मा वाले विशेषाधिक, 6,7,8 उससे द्रव्य आत्मा वाले, उपयोग आत्मा वाले, दर्शन आत्मा वाले परस्पर तुल्य (बराबर), किन्तु वीर्य आत्मा वाले से विशेषाधिक हैं।

(c) गुणस्थान द्वार का उदीरणा द्वार लिखिए।

उ. पहले से लेकर छठे गुणस्थान तक सात-आठ-छह कर्मों की उदीरणा होती है (सात की उदीरणा हो तो आयु कर्म की नहीं होती तथा छह की उदीरणा हो तो आयु व वेदनीय दोनों को छोड़ना) सातवें, आठवें और नौवें गुणस्थान में छह कर्मों की उदीरणा (आयु और वेदनीय छोड़कर), दसवें गुणस्थान में छह या पाँच कर्मों की उदीरणा (छह की हो तो पूर्वोक्त दो छोड़ना और पाँच की हो तो मोहनीय भी छोड़ देना) ग्यारहवें गुणस्थान में पाँच कर्मों की उदीरणा, बारहवें गुणस्थान में पूर्वोक्त पाँच कर्मों की या नाम और गोत्र इन दो कर्मों की उदीरणा होती हैं। तेरहवें गुणस्थान में पूर्वोक्त दो की उदीरणा होती है। चौदहवें गुणस्थान में उदीरणा नहीं होती।

(d) अन्तर किसे कहते हैं? 12, 13 व 14वें गुणस्थान का अन्तर क्यों नहीं ?

उ. किसी गुणस्थान को एक बार छोड़ कर दूसरी बार फिर उसी गुणस्थान में आने तक जितना काल बीच में व्यतीत होता है, उसे 'अन्तर' कहते हैं।

12वें, 13वें और 14वें गुणस्थान वाले जीव इन गुणस्थानों से नीचे गिरते ही नहीं हैं। एक बार चढ़कर सिद्ध हो जाते हैं। अतएव इनका कुछ भी अन्तर नहीं है।

(e) दूसरे गुणस्थान से तीसरे गुणस्थान में जीव असंख्यात गुणा होते हैं क्यो? स्पष्ट कीजिए।

उ. यद्यपि दूसरा और तीसरा गुणस्थान चारों गतियों में पाया जाता है, परन्तु दूसरे की अपेक्षा तीसरे की स्थिति संख्यात गुणी है, तथा दूसरा गुणस्थान तो मात्र उपशम समकित से गिरते हुए ही आ सकता है, किन्तु मिश्र गुणस्थान मिथ्यात्व से चढ़ते हुए अथवा त्रिपुंज सहित प्रथमोपशम से गिरते समय अथवा क्षयोपशम से गिरते हुए चौथे, पाँचवें, छठे किसी भी गुणस्थान से आ सकता है। इस कारण तीसरे गुणस्थान वाले जीव दूसरे से असंख्यात गुणा है।

(f) गुणस्थानों में भाव द्वार को लिखिए।

उ. पहले, दूसरे और तीसरे गुणस्थान में- औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक- ये तीन भाव होते हैं। चौथे से ग्यारहवें गुणस्थान तक उपशम श्रेणी वालों में पाँच भाव होते हैं। चौथे से बारहवें गुणस्थान तक क्षपक श्रेणी वालों में औपशमिक छोड़कर शेष चारों भाव पाये जाते हैं। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में औदयिक, क्षायिक और पारिणामिक भाव- ये तीन भाव होते हैं तथा सिद्धों में क्षायिक और पारिणामिक- ये दो भाव होते हैं।

(g) समुद्‌घात की परिभाषा एवं भेद लिखिए।

उ. सम+उद्+घात, इन तीनों से मिलकर समुद्‌घात शब्द बनता है। एकीभाव पूर्वक प्रबलता से कर्मों का घात करना, समुद्‌घात कहलाता है।

इसके सात भेद है- 1. वेदनीय 2. कषाय 3. मारणान्तिक 4. वैक्रिय 5. तैजस 6. आहारक 7. केवली समुद्‌घात

(h) बहुत से सन्नी मनुष्य 4 व 5 अनुत्तर विमानपने तीनों कालों की अपेक्षा से द्रव्येन्द्रियाँ लिखिए।

उ. बहुत से संज्ञी मनुष्य के जीवों ने पाँच अनुत्तर विमान के देव रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीतकाल में संख्यात कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में संख्यात करेंगे।

(i) युगलिक मनुष्यों में आगति-गति द्वार लिखिए।

उ. आगति 2- तिर्यंच और मनुष्य से। गति-एक- देवगति में। दण्डक की अपेक्षा-तीस अकर्म भूमि की आगति दो दण्डक से- मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय से।

गति-दण्डक 13 में - 10 भवनपति, 1 वाणव्यंतर, 1 ज्योतिषी और 1 वैमानिक में।

(j) एक-एक नारकी के नैरयिक की मनुष्य व 5 अनुत्तर विमानपने तीनों काल की द्रव्येन्द्रियाँ लिखिए।

उ. एक-एक नारकी के नैरयिक ने संज्ञी मनुष्य रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनंत कीं, वर्तमान काल में नहीं है और भविष्य काल में नियमपूर्वक 8 या 16 या 24 यावत् संख्यात, असंख्यात, अनंत करेंगे। एक-एक नारकी के नैरयिक ने पाँच अनुत्तर विमान रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में कोई करेंगे, कोई नहीं करेंगे। जो करेंगे वे चार अनुत्तर विमान रूप में आठ अथवा सोलह करेंगे और सर्वार्थसिद्ध रूप में आठ करेंगे।

(k) असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय की अवगाहना लिखिए।

उ. जलचर, स्थलचर,खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प। सभी की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट जलचर की 1000 योजन। स्थलचर की प्रत्येक (पृथक्त्व) गाउ। खेचर की प्रत्येक धनुष, उरपरिसर्प की प्रत्येक योजन और भुजपरिसर्प की प्रत्येक धनुष की।

(l) आराधक के भेद लिखिए।

उ. तीन प्रकार के जीव आराधक कहलाते हैं-

1. आयु कर्म का बंध नहीं करने वाले मनुष्य जो उसी भव में मोक्ष जायेंगे।

2. अप्रमत्त अवस्था(7वें से 11वें गुणस्थान तक) में काल करने वाले साधु-साध्वी।

3. चौथे से सातवें गुणस्थान में रहते हुए अगले भव का आयुष्य बंध करने वाले जीव।

(m) नारकी की अवगाहना लिखिए।

उ. नारकी की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट पहली नारकी की 7¾ धनुष, 6 अंगुल। दूसरी नारकी की 15½ धनुष, 12 अंगुल। तीसरी नारकी की 31¼ धनुष। चौथी नारकी की 62½ धनुष। पाँचवीं नारकी की 125 धनुष। छठी नारकी की 250 धनुष। सातवीं नारकी की 500 धनुष।

(n) जो वर्तमान में क्षयोपशम समकिती है, किन्तु बाद में उपशम श्रेणि करेंगे, उनकी अपेक्षा से बनने वाले भंग लिखिए।

उ.

1. चार का उपशम	दो का क्षयोपशम	एक का वेदन
2. 6 का उपशम		एक का वेदन
3. 7 का उपशम		
4. 4 की विसंयोजना	2 का क्षयोपशम	एक का वेदन
5. 4 की विसंयोजना	2 का उपशम	एक का वेदन
6. 4 की विसंयोजना	3 का उपशम	